एस.सी.ई.आर.टी., बिहार द्वारा विकसित

# सेवाकालीन दो वर्षीय
# डिप्लोमा इन एलिमेन्ट्री एजुकेशन
## (दूरस्थ शिक्षा)

# स्वाध्याय सामग्री

## कला शिक्षा- 2

(तृतीय सत्र)

S3.6

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्
(एस.सी.ई.आर.टी.), महेन्द्रू, पटना (बिहार)

**प्रकाशक**
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्
(एस.सी.ई.आर.टी.), महेन्द्रू, पटना, (बिहार)

© **दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, (एस.सी.ई.आर.टी.),बिहार**



| डिप्लोमा इन एलिमेन्ट्री एजुकेशन (दूरस्थ शिक्षा) कार्यक्रम | |
|---|---|
| सत्र | तृतीय |
| विषयपत्र | कला शिक्षा–2 |
| **ISBN** | **978-93-84709-08-2** |

| प्रथम संस्करण, 2014 | |
|---|---|
| प्रतियाँ | 12,000 |

**डी.एल.एड. (ओ.डी.एल.) के साधनसेवियों एवं प्रशिक्षुओं (कार्यरत शिक्षकों/शिक्षिकाओं) के स्वाध्याय हेतु निःशुल्क उपलब्ध**

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, महेन्द्रू, पटना (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं बिहार स्टेट टेक्स्ट बुक पबलिशिंग कॉरपोरेशन द्वारा आदेशित तथा राजधानी ऑफसेट प्रिंटर्स, त्रिपोलिया, पटना–07 द्वारा मुद्रित

# स्व-अधिगम सामग्री विकास समूह
# विषय-पत्र : कला शिक्षा-2

**दिशाबोध**

- श्री हसन वारिस, निदेशक, राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, पटना
- डॉ. सैयद अब्दुल मोईन, विभागाध्यक्ष, अध्यापक शिक्षा विभाग, एस.सी.ई.आर.टी, पटना
- डॉ. प्रमिला मनोहारन, शिक्षा विशेषज्ञ, यूनिसेफ, पटना
- डॉ. ज्ञानदेव मणि त्रिपाठी, प्राचार्य, मैत्रेय कॉलेज ऑफ एजूकेशन एण्ड मैनेजमेन्ट, हाजीपुर(वैशाली)

**परामर्श**

- प्रोफेसर पवन सुधीर, एन.सी.ई.आर.टी., दिल्ली
- श्री मती सुलेखा भार्गव, सत्या ग्लोबल सोसाईटी, दिल्ली

**संपादन**

- श्री कात्यायन कुमार त्रिपाठी, प्रधान शिक्षक, प्राथमिक विद्यालय, गुलज़ारबाग, पटना
- श्री सुमन कुमार सिंह, प्रखण्ड संसाधन केन्द्र समन्वयक, भगवानपुर हाट, सिवान

**लेखन**

- श्री शशिकांत शर्मा, प्रखण्ड संसाधन केन्द्र समन्वयक, आरा, भोजपुर
- श्री मनोज कुमार त्रिपाठी, प्रखण्ड संसाधन केन्द्र समन्वयक, बड़हरा, भोजपुर
- श्री सुमन कुमार सिंह, प्रखण्ड संसाधन केन्द्र समन्वयक, भगवानपुर हाट, सिवान
- श्री कात्यायन कुमार त्रिपाठी, प्रधान शिक्षक, प्राथमिक विद्यालय, गुलज़ारबाग, पटना
- श्री राजेश कुमार सिन्हा, बी.आर.सी.सी., मध्य विद्यालय, उछौली, खिजरसराय, गया
- श्री गोपाल प्रसाद, बी.आर.सी.सी., बी.आर.सी., मोतीहारी, मुजफ्फरपुर
- सुश्री संगम, विद्या भवन सोसाईटी, उदयपुर
- श्री मुअज्जम, अजीम प्रेमजी फाउण्डेशन, बंगलौर

**संयोजन**

- श्री मती रीता राय, व्याख्याता, अध्यापक शिक्षा विभाग, एस.सी.ई.आर.टी, पटना

## आमुख

कला को सौंदर्यबोध की अभिव्यक्ति माना जाता है। मनुष्य संसार के उत्कृष्ट प्राणियों में से एक है, जिसमें सौंदर्यबोध पाया जाता है। सृजनशीलता और कलात्मकता एक दूसरे को सम्पूर्ण करते हैं । शिक्षा सृजनशीलता का पर्याय है जो उसकी कृतियों में विशेषता पैदा करती है। शिक्षा और कला का संबंध मनुष्यों में सृजन की भावना भरती है ।अतः हम कह सकते हैं कि अच्छी शिक्षा पाने के लिए बच्चों को सृजनात्मक कार्य करने के मौके मिलने चाहिए और इसके लिए आवश्यक है कि उनके सीखने–सीखाने की प्रक्रियाओं में कला और सौंदर्यबोध को विशेष स्थान दिया जाय । सामान्यतः यह माना जाता रहा है कि कला बच्चों को पठन–पाठन से दूर कर देती है। जिससे बच्चों का शैक्षणिक विकास अवरुद्ध हो जाता है । शिक्षाविदों ने यह सिद्ध किया है कि कला शिक्षा कोई पृथक ज्ञान नहीं है ब्लकि हमारे दैनिक जीवन का ही हिस्सा है, जिसका प्रयोग हम किसी न किसी रुप में प्रतिक्षण करते रहते हैं । जैसे बातचीत करने की कला हो चाहे सामग्रियों के सुरुचिपूर्ण संधारण की कला, हमारी ज्ञानेन्द्रियां प्रतिपल सौन्दर्यानूभूति के लिए सजग रहती हैं, और ऐसी अनुभूति होते ही हमें आंतरिक प्रसन्नता प्राप्त होने लगती है। कला के माध्यम से हम एक दूसरे के भावों एवं अनुभवों को सराहते हैं। व्यक्तिगत रुचि, मनोभाव, प्राथमिक दृष्टिकोण व अभिरुचि आदि इसी के रुप हैं, जिसके माध्यम से हम किसी चीज को समझते हैं।

कला के माध्यम से हम एक संवेदनशील समाज की रचना कर सकते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षकों में संवेदनशीलता पैदा किया जाए । इस पाठ्यक्रम के माध्यम से हमने यह कोशिश किया है कि कला के प्रति एक सकारात्मक सोच पैदा हो, जो शिक्षकों के माध्यम से समाज में कला के प्रति सकारात्मक नजरिया पैदा करेगी । साथ ही , कला के प्रति संवेदनशील शिक्षक एवं शिक्षिकाएँ अपनी कक्षा में भी इसे महत्व देंगें तथा अपने विद्यार्थीयों के अंदर छुपे सृजनात्मकता को भी पहचान पायेंगें।

हम यह अपेक्षा रखते हैं कि इस कार्यक्रम के पश्चात शिक्षक कला के विभिन्न रुपों जैसे प्रदर्शन कला में लोक नृत्य, शास्त्रीय नृत्य, रंगमंच, कठपुतली कला, संगीत गायन, वाद्य यंत्रों को समझ सकेगें तथा इनका सार्थक एवं उचित प्रयोग शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में करेगें । साथ ही यह स्पष्ट कर है कि यह पाठ्य सामग्री कला शिक्षा के कुछ बुनियादी अवधारणाओं की समझ प्रस्तुत करता है जो प्रशिक्षुओं की सहायता मात्र के लिए है ।

इस पाठ्य सामग्री में यह प्रयास किया गया है कि सामान्य शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में कला का समावेश किया जाना लाभदायक होता है, जो बच्चों को विषय की अवधारणा स्पष्ट कराने में सहायक होता है। अतः हमने प्रारंभिक कक्षाओं में कला –अनुभवों का आयोजन हेतु योजना, बनाने एवं उन्हें सफलतापूर्वक संचालित करने के बारे में बताने की कोशिश की है। विद्यालय समय –सारणी में कला शिक्षण को स्थान देने का प्रयास किया है।

कला शिक्षा में मूल्यांकन की प्रक्रिया एवं इसका महत्व स्पष्ट करने की कोशिश की गई है। इसके लिए आवश्यक है कि कला में मूल्यांकन के विभिन्न उपागमों एवं तकनीकों को समझा जाय । जैसे अवलोकन सूची बनाना, परियोजना कार्य, घटना वृतांत का अभिलेखन, प्रदर्शन, आदि । प्रस्तुत पाठ्य सामग्री संपूर्ण पाठ्यक्रम के तृतीय सत्र में समावेशित है जो तीन इकाईयों में है।

यह प्रयास किया गया है कि प्रस्तुत पठन साभग्री को सरल एवं स्पष्ट रखा जाए । आशा है आप इस पाठ्य सामग्री के माध्यम से शिक्षा में कला एवं कला शिक्षा की भूमिका एवं उसकी समकालीन आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील हो सकेंगे । पाठ्य सामग्री को और संवर्द्धित करने के लिए आपके सुझाव सदैव आमंत्रित हैं।

**डॉ. सैयद अब्दुल मुईन**
निदेशक
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, बिहार

**हसन वारिस**
निदेशक
राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्
(एस०सी०ई०आर०टी०),महेन्द्रू, पटना (बिहार)

# विषय सूची


| इकाई सं० | इकाई का नाम | पृष्ठ |
|---|---|---|
| 1. | कला अनुभव | 1 – 10 |
| 2. | प्रदर्शन कला (प्रायोगिक) | 11 – 45 |
| 3. | कला शिक्षा (मूल्यांकन) | 46 – 62 |
| 4. | सन्दर्भ पुस्तकें और पाठ्यसामग्री | 63 |


Scanned by CamScanner

# इकाई – 1

## कला अनुभव

**1.1** परिचय

**1.2** सीखने के उद्देश्य

**1.3** पूर्व अनुभव

**1.4** प्रारंभिक कक्षाओं के लिए अनुभवों का आयोजन

1.4.1 कला अनुभव क्या और क्यों?

1.4.2 कला अनुभव की योजना एवं समयसारिणी में स्थान

**1.5** कला अनुभव के लिए स्थान की व्यवस्था

**1.6** कला अनुभव के लिए सामग्री

**1.7** समेकन

**1.8** प्रदत्त कार्य

---

**"छोटे बच्चों की रेखाचित्र और चित्रकलाएँ बहुत खूबसूरत होती हैं, उसमें अद्‌भुत रंग और लय होती है। केवल वही कलाकार कल्पना की उस पड़ाव तक पहुँच सकता है जिसने कला के बारे में गहन और गहरा ज्ञान प्राप्त किया हो । "– नन्दलाल बसु, चित्रकथा**

### 1.1 परिचय

अभी तक के पाठों में हमें समझ बनाने की कोशिश कर रहे थे की कला क्या हैं? प्रत्येक कला किसी भौतिक वस्तु , शरीर या शरीर की किसी बाहरी अंग के साथ संवाद करती है । संवाद करते हुए कला किसी उपकरण विशेष का सहारा ले भी सकती है और नहीं भी । कला की इस संवाद के जरिए कुछ निर्माण करने की चेष्टा रहती है, जिसे या तो आप देख पाएँ , सुन पाएँ या छू पाएँ, महसूस कर पाएँ। जब हम एक व्यक्ति विशेष के जीवन में कला की उपस्थिति और उस उपस्थिति के कारण की बात करें, तो अलग–अलग तर्क निकल कर सामने आते हैं। जैसे–

1. क्या कला किसी समाजिक जरूरत के लिए है?
2. क्या कला किसी सौंदर्यात्मक खुशी के लिए है?
3. या फिर यह खूद को व्यक्त करने की एक जरूरत है, जो खूद को आकार देने की एक कोशिश या आत्माभिव्यक्ति है।

किसी भी कला अनुभव या कला अभिव्यक्ति के ये सारे कारण हो सकते हैं। जब हम कला की बात शिक्षा और विद्यालय के संदर्भ में करते हैं, तो यह आवश्यक है की हम कला शिक्षा के बड़े उद्देश्यों को ध्यान में रखें। हम शिक्षा किसे कहते हैं और इसके लिए किन प्रक्रियाओं की आवश्यक्ताा है। इसके बारे में हमने पिछले साल एक समझ बनाने की कोशिश की है। कक्षा में कला की क्या भूमिका है, क्या वह स्वयं में एक उद्देश्य है या कहीं और पहुँचने का रास्ता है, इस पर भी हमने चर्चा की है। हमने यह समझ बनाने की कोशिश की है किस प्रकार कला सीखने–सीखाने का एक सशक्त माध्यम है, और यह किसी भी व्यक्ति के समग्र विकास के लिए जरूरी है।

इस पाठ के अन्तर्गत हम ये समझने की कोशिश करेंगे की हमने जिस कला और शिक्षा की अभी तक एक सांझा समझ बनाई है, उसके अनुसार बच्चों के लिए हम किस प्रकार के और कैसे कला अनुभव बच्चों के लिए कक्षा में दे सकते हैं।

## 1.2 सीखने के उद्देश्य

प्रारंभिक कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए कला शिक्षा के अंतर्गत सीखने के महत्त्वपूर्ण उद्देश्य निम्नलिखित है–

- अपनी कक्षा–कक्ष में कला अनुभव के अवसर कैसे बना सकते हैं, इस पर एक समझ बनाना।
- कला अनुभव के महत्व और उपयोगिता के बारे में एक समझ बनाना।
- अब तक की कला और शिक्षा संबंधीत समझ को इस्तेमाल करते हुए बच्चे के लिए कक्षा–कक्ष में रूचिकर और अर्थपूर्ण कला–अनुभव के मौके बनाने की दक्षता विकसित करना।
- बच्चों को कला के संदर्भ में सहज होने में मदद करना।

## 1.3 पूर्व अनुभव

दृश्य एवं शिल्प की विभिन्न वस्तुओं का प्रयोगात्मक स्वरूप की समझ हमारे पास है। विभिन्न प्रकार के रंगों के प्रयोग से होकर गुजरते हुए हमने चित्रकला के विभिन्न स्वरूप को समझा, साथ ही विभिन्न वस्तुओं के रचनात्मक प्रयोगों का अनुभव भी हमारी इन्द्रियों में विद्यमान है। इन प्रयोगात्मक प्रक्रियाओं से गुजरते हुए हमने एकीकृत अधिगम को महसूस किया और सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में इन्द्रियों के इस्तेमाल और महत्व को भी अनुभव किया और उस पर विचार भी किया। अब अपेक्षा है कि ये अनुभव और गहराएंगे, एन्द्रिक अहसास बढ़ेंगे और एकीकृत अधिगम हमारी शिक्षण प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग बनेगा।

## 1.4 प्रारंभिक कक्षाओं के लिए कला अनुभवों का आयोजन

हम कला की उपयोगिता को दोनों तरह से स्वीकार करते हैं, स्वतंत्र विषय के रूप में तथा अन्य विषयों को सिखाने के माध्यम के रूप में। इस मुद्दे पर एक समझ होने के बावजूद भी ऐसा देखा जाता है कि जब हम कक्षा–कक्ष के संदर्भ में कला के बारे में सोचते हैं, तो कुछ स्पष्ट तस्वीर उभर कर नहीं आती। ऐसा होने का एक मुख्य कारण यह हो सकता है कि ज्यादातर कलाओं को उत्पाद पैदा करने की दृष्टि से देखा जाता रहा है। जबकि कला के द्वारा

सीखना उसकी प्रक्रिया में निहित है। कला प्राकृतिक है, प्रकृति से प्रभावित है। हम ये पहले के पाठों में पढ़ चुके की किस तरह कला प्रकृति से संवाद करने का एक तरीका है, प्रकृति में व्यक्ति विभिन्न वस्तुएँ और उनके संपर्क में आने के बाद जो भी हमारे मन में भाव, विचार और सवेंग उठते हैं, उनकी अभिव्यक्ति ही कला हैं कला चित्रों में है, मुर्तियों में है, संगीत में है, नृत्य में है, कविता में है, कहानी में है, हमारी तमाम अभिव्यक्तियों में है।

कक्षा में कला अनुभव के मौके बनाने की बात करें तो बच्चों को एक अच्छे कला अनुभव देने में कतई जरूरी नहीं है की इसे करवाने वाले व्यक्ति ने किसी कला अथवा कलाओं में महारथ हासिल की हो। देखा गया है कि जो लोग किसी भी कला में महारथ हासिल कर चुके होते हैं, वे बच्चों को अपनी ही शैली में सीखने और समझने की कोशिश करते हैं। ऐसी प्रक्रिया में बच्चों को खूद से, कुछ अलग सोचने का मौका नहीं मिलता। एक बेहतर कला अनुभव के लिए जरूरी है की शिक्षक को इस बात की समझ हो की बच्चे कैसे सोचते हैं, कैसे सीखते हैं। यह आवश्यक है कि शिक्षक कला की प्रकृति और उसकी खूबसूरती को जानता हो। कला की समझ होना एक बात है, और बच्चों की कला की समझ होना दूसरी बात है। कक्षा–कक्ष में यह आवश्यक है की शिक्षक यह जानने की कोशिश करें कि बच्चे कला के साथ कैसे संवाद करते हैं, कला को किस प्रकार वे अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम चुनते हैं। बच्चों की जरूरतें और उनकी इच्छाओं को जानना जरूरी है।

ये मुमकीन है की बच्चे कला की परिभाषा गढ़ते हुए मिले। मेरा मानना है कि उनका परिभाषा गलत नहीं होगी। यहाँ आपका काम यह हो जाता है किस प्रकार उनकी परिभाषा को भी पूरी कला–अनुभव प्रक्रिया के साथ ले कर चलना है। बच्चों के लिए बेहतर कला अनुभव बनाने के लिए यह जरूरी है कि हम यह समझ सकें , बच्चों की जिंदगी में कला की क्या भूमिका है, क्या वे वैसी ही है जैसे किसी वयस्क की जिंदगी में होती हैं। बच्चे जब कागज पर कुछ लकीरे खिंचते हैं तो क्या वे सिर्फ आड़ी–तीरछी रेखाएँ ही है या फिर उनके द्वारा की गई कलाम्मक आत्माभिव्यक्ति।

एक मनमोहक चित्र का पूर्ण बन जाना, दर्शकों को लुभाने वाला एक नृत्य या गीत तैयार हो जाना या एक नाट्य प्रस्तुति हो जाना उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना इसकी सृजन की प्रक्रिया। प्राथमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए विभिन्न कलाओं से परिचय पाना, उनमें अपनी अभिव्यक्ति ढूंढ पाना और साथ ही अपनी सांस्कृतिक विरासत से रिश्ता बनाना सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।

### 1.4.1 कला अनुभव क्या और क्यों?

कला अनुभव से तात्पर्य ऐसी प्रक्रिया से है जिसमें बच्चे को विभिन्न कलाओं (चित्रकला, संगीत, नृत्य, नाटक आदि) के अनुभव से गुजारते हुए सभी कलाओं से परिचय कराया जाए। अनुभव से मतलब एक ऐसी एकीकृत प्रक्रिया से है जिसमें बच्चे की सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में शरीर, मन और मस्तिष्क की बराबर से भागीदारी हो।

**जरा सोचिये**

**आपके अनुसार क्या ज्यादा महत्वपूर्ण है और क्यों?**

**(अ) पूरी तस्वीर बनाना पर तस्वीर से कोई खास जुड़ाव न हो पाना।**

**(ब) अधूरी ही तस्वीर बनाना पर उस तस्वीर की प्रक्रिया एवं विषय से पुरा जुड़ाव हो पाना।**

बच्चे को प्रारंभिक विद्यालय में ऐसे अवसर प्रदान किये जाये कि वह अपनी इच्छानुसार कला के विभिन्न माध्यमों के साथ संवाद कर सहज वातावरण में स्वयं को अभिव्यक्त करते हुए आनंद का अनुभव कर सके। स्वतंत्र चिंतन, सृजनशीलता और सामाजिकता उनके व्यक्तित्व का हिस्सा बनें।

इस प्रक्रिया में इस बात को समझना महत्त्वपूर्ण है कि प्रारंभिक कक्षाओं में बच्चे को विभिन्न कलाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति के अवसर उपलब्ध कराना अधिक महत्त्वपूर्ण है, न कि कला विषय में पारंगत होना। कला विशेष में बच्चों का कौशल विकसित करने पर ध्यान केन्द्रित करने के बजाए अगर बच्चों को सभी कलाओं के विभिन्न रूपों से अपने ढंग से दोस्ती होने देने का वातावरण मिले तो बच्चे उत्साह और उमंग से सीखने की राह पर खुद–ब–खुद चल पड़ेंगे। विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों को शामिल कर लेने के गुण के कारण कलाओं में सीखने–सिखाने की अनगिनत गांठें खोल देने की क्षमता अन्तर्निहित है।

कला अनुभव के दौरान इस बात का ध्यान रखे कि कला अनुभव योजनाबद्ध (क्या, क्यों और कैसे की स्पष्टता) और लचीले, दोनों हो ताकि सभी बच्चों के सीखने–सिखाने की गति और रूचि का ख्याल रख पाए। पूरे कला–अनुभव के दौरान बच्चे को ये स्वतंत्रता हो की वो अपनी कृती को अपना एक अर्थ दे सकें। और अगर वो अपनी कलाकृति को उसी समय पूरा ना कर के कोई दूसरा काम करना चाहिए तो उन पर दबाव नहीं बनाना चाहिए। यहाँ यह जानने की जरूरत है कि कलात्मक अभिव्यक्ति आपकी भावनाओं से जुड़ी होती है, और बच्चों के साथ भी यही होता है। बच्चे स्वभाव से बहुत चंचल होते हैं, अगर वे एक काम अधूरा छोड़ कर दूसरा काम प्रारंभ करते हैं तो उन्हें ऐसा करने दीजिए। बस यह याद रखिए की कभी कभी बच्चे का ध्यान उस अधूरी कलाकृति की तरफ ले कर जाते रहिए।

अपनी कलावस्तु को पूरा करने का दबाव बनाने की बजाय कोशिश कीजिए की बच्चे किसी कलात्मक प्रक्रिया में बराबर की भागिदार बने रहें। बच्चे के लिए कला अनुभव के बारे में सोचते हुए इस बात का ध्यान रखिएगा की कहीं उनमें एकरूपता या निरसता ना आ जाए, जिस वजह से बच्चे खूद को कटा हुआ महसूस करने लगे। बच्चों के जरूरत और रूचि के अनुसार सामग्री में नवीनता लाना चाहिए । अपने स्तर पर भाषा और विषय की स्पष्टता रखें। किसी भी प्रकार की अस्पष्टता कक्षा में निरर्थक अफरा–तफरी पैदा कर सकती है। बच्चों के साथ बातचीत करते हुए कोशिश करें की आपके प्रश्न उत्पाद केन्द्रित ना होकर प्रक्रिया केन्द्रित हो कला अनुभव के दौरान खोजने और प्रयोग के अधिकाधिक अवसर मिल सकें। उन्हें अलग–अलग प्रक्रियों से गुजरते हुए, अलग–अलग माध्यमों के द्वारा काम करने दें। हो सकता है कि कुछ बच्चे केवल पेंसिल से ही कुछ बनना चाहते हैं, कुछ को पानी वाला रंग चाहिए हो। इस बात की कोशिश मत कीजिए की सारे बच्चे एक ही समय एक जैसा काम करें। बच्चों को अपने विचार प्रकट करने और सामग्रियों के रचनात्मक उपयोग के अवसर स्वतंत्र रुप से दें। कोशिश कीजिए कि बच्चों को विभिन्न प्रकार के अलग–अलग और ज्यादा मात्रा में अनुभव मिले और उन्हें अपने विचार बनाने दीजिए। सामान्यतः ऐसा होता है कि हम बच्चों को ब्लैक बोर्ड पर कोई एक तस्वीर बना कर दिखा देते हैं और सब बच्चों को उसी को बनाने के लिए कहते हैं। इस तरह हम बच्चे को कल्पना करने और खूद से चुनने की स्वतंत्रता नहीं दे पाते। जब बच्चों

को हम अलग–अलग नमूने दिखाते हैं तो बच्चों के सामने विभिन्न विकल्प होते हैं जिनमें से उन्हें अपने लिए जो उपयुक्त लगता है, उसे वो चुन सकें।

कला अनुभव की कक्षाओं को इतना लचीला होना पड़ेगा जहाँ बच्चों की लगभग सभी प्रकार की अभिव्यक्तियों को जगह मिल सकें। हमें यह ध्यान रखना पड़ेगा की कला की निपुनता प्राप्त करना हमारा उद्देश्य नहीं है।

### 1.4.2 कला अनुभव की योजना एवं समयसारिणी में स्थान

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सुगम और रोचक बनाने में कला अनुभव का विशेष महत्व को समझने की कोशिश की है । आइए विद्यालयी शिक्षण योजना और समय सारणी में इसे सार्थक रुप से समेकित करने का प्रयास करते हैं। सामान्यतः यह देखा जाता है कि विद्यालयी शिक्षण व्यवस्था में कला शिक्षण के लिए कला अनुभव प्राप्त करने हेतु कोई स्थान नहीं होता है। जिस प्रकार गणित , भाषा, एवं पार्यावरण विषयों के शिक्षण को महत्व देते हुए शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की योजना में स्थान दिया जाता है, कला अनुभव के क्रियाकलापों के लिए ऐसा कोई समय और योजना नहीं बनाया जाता । यह तो सर्वमान्य तथ्य है कि बच्चे कला अनुभव की विभिन्न प्रक्रियाओं में रुचिपूर्वक संलग्न होकर विभिन्न विषयों को सुगमतापूर्वक सीखते हैं। साथ ही विषयों की अवधारणात्मक समझ भी पक्की हो जाती है। कई शिक्षाविदों ने शिक्षण प्रक्रिया में कला के समावेश को प्रभावी माना है। प्राथमिक कक्षाओं में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के परिप्रेक्ष्य में कला अनुभव एक सशक्त माध्यम है, इसमें कोई शंका नहीं है। आपने अनुभव किया होगा कि बच्चे कई प्रकार के कला अनुभव की प्रक्रिया स्वतः किया करते हैं जैसे गुड्डे –गुड़ियों का ब्याह, चोर सिपाही का स्वांग, बालू का घरौंदा, कागज की नाव, बड़ों का नकल उतारना आदि । सच तो है कि बच्चे इन क्रियाकलापों में आनंद तो प्राप्त करते ही हैं साथ ही जीवन के जीने का अधिगम स्वतः प्राप्त करते जाते हैं। हमें भी एक शिक्षक होने के नाते, विद्यालय एवं विद्यालय के बाहर किये जानेवाली कला अनुभवों की योजना बनानी चाहिए जो बच्चों को स्वतः अधिगम की प्रक्रिया में जोड़ दें। जैसे अपने आसपास रहने वाले शिल्पकारों को अपने शिल्प की वस्तुओं के निर्माण का कार्यशाला आयोजित करना। प्राकृतिक वातावरण में प्रकृति का अवलोकन करवाना। अजायबघर (म्यूजियम), चिड़ियाघर आदि स्थानों का भ्रमण कराना । इतना ही नहीं हो सके तो मान्य विषयों के शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में कला के क्रियाकलापों का सार्थक एवं उचित समावेश करने की योजना बनाना। मेरा मानना है कि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में कला और सौंदर्यबोध को समावेशित करने से बच्चों के सीखने का दर बढ़ तो जाता ही है साथ ही उन्हें विद्यालय में बच्चों की रुचि भी बढ़ती है।

शिक्षा का मतलब समग्र विकास से है, समग्र विकास के लिए यह ज़रूरी है कि शिक्षा की विधि अथवा पद्धति भी समग्र हो, अपने में समग्रता लिए हो। जब हम कक्षाकक्ष में सीखने–सिखाने की प्रक्रिया के बारे में बात करते हैं तो हम उसमें भी समग्रता चाहते हैं। हमारे आसपास के वातावरण में समझ अलग–अलग विषयों में विखंडित नहीं है अपितु उसमें एक समेकन है। इस संदर्भ में हम पत्तों का उदाहरण ले सकते हैं। आप चाहें तो उस पर चर्चा करते हुए भाषा की एक पाठ योजना बना सकत हैं। पत्तों के रंग, रूप, शैली, आकार एवं उसके उपयोग के ऊपर बात करते हुए उसे पर्यावरण अध्ययन की पाठ योजना में डाल सकते हैं या फिर पत्तों के साथ काम करते हुए आप पत्तों के द्वारा एक कलात्मक अभिव्यक्ति की ओर बढ़ सकते हैं। अब कलात्मक अभिव्यक्ति में आप चाहें तो पत्तों की मदद से एक कोलार्ज बनवा सकते हैं, पत्तों की छाप लेकर उससे कोई चित्र बनवा सकते हैं आदि। कहने का अर्थ यह है

कि किसी वस्तु/प्रक्रिया/स्थान/व्यक्ति आदि के विषय में एक सम्पूर्ण समझ बनाने के लिए हम उसे अलग–अलग विषय आदि में नहीं बांधते।

इसी प्रकार कक्षा में जब हम कला अनुभव की बात करते हैं तो वहां भी हम उसे समग्रता में देखते हैं। जिस प्रकार कला हमारी ज़िंदगी से कटी हुई न होकर हमारे ज़िंदगियों में गूंथी हुई है, उसी प्रकार कला अनुभव को अलग–थलग न होकर कक्षाकक्ष में होने वाली तमाम प्रक्रियाओं का एक भाग बनाना होगा। अमूमन विद्यालयों में ये देखा जाता है कि किस प्रकार कला किसी एक उत्सव विशेष की घटना बनकर रह जाती है, या तो वह वार्षिक उत्सव में होने वाली प्रस्तुति बन जाती है या फिर किसी प्रतियोगिता विशेष में प्रदर्शन करने वाली कौशल बन जाती है। जब हम ये बात करते हैं कि कला जीवन जीने का एक तरीका है तो ये ज़रूरी है कि किस तरह हम कक्षा में भी कला अनुभव को एक प्रक्रिया की तरह देखें, न कि एक उत्पाद के रूप में सामने आने वाली प्रस्तुति की तरह।

- एक शिक्षक के लिए यह आवश्यक है कि यह कला अनुभव के लिए योजनाबद्ध तरीके से अपने लक्ष्यों की संप्राप्ति करे।
- आवश्यकतानुसार दैनिक, साप्ताहिक, मासिक और वार्षिक कला अनुभव की योजना विद्यालय स्तर पर बनावें तथा बच्चों के समूह निर्माण कर अलग–अलग कार्य देकर कला अनुभव के लक्ष्यों की संप्राप्ति करें।
- शैक्षिक भ्रमण का आयोजन करवाना अत्यंत लाभप्रद होगा यदि शिक्षक भ्रमण के साथ–साथ गाइड के माध्यम से भ्रमण वाले स्थान के बारे में जानकारी दिलवाएं तथा संग्रहालय की भी सैर कराएं। ये आवश्यक है कि बच्चों को संग्रहालय में रखी गई वस्तु के बारे में बताया जाए। यदि कला एवं शिल्प संग्रहालय विद्यालय के आस–पास अवस्थित हो तो पाठ योजना के अंतर्गत बच्चों को वहाँ ले जाने की नियमित योजना बनानी चाहिए जिससे बच्चों को कला से संबंधित प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होगा तथा साथ ही कला के प्रति प्रेरित भी होंगे। पाठ योजना से जोड़ने पर विषय–विशेष को सरलता व सहजता से समझने में भी मदद मिल सकेंगे।
- शैक्षिक भ्रमण तथा जीवन से जुड़े अन्य अनुभवों को बच्चों की इच्छा एवं सहजता के अनुसार कला के विभिन्न माध्यमों का प्रयोग करते हुए अभिव्यक्त और साझा कराया जाए।
- समय–समय पर बच्चों के द्वारा निर्मित कला एवं शिल्प की वस्तुओं की विद्यालय एवं संकुल स्तर पर प्रदर्शनी लगाने की व्यवस्था की जानी चाहिए तथा उन्हें प्रोत्साहित भी किया जाना चाहिए।
- वर्ष भर के कला अनुभवों के आधार पर विद्यालय में एक वार्षिक कला महोत्सव का आयोजन किया जाना चाहिए, जिसमें विभिन्न प्रकार की कला विधाओं जैसे दृश्य एवं प्रदर्शन कला का समायोजन हो।
- विद्यालयों में समय–समय पर कला से जुड़ी विभिन्न कार्यशालाओं का भी आयोजन किया जाए, जिसमें विभिन्न विधाओं के स्थानीय, क्षेत्रीय एवं स्थापित लोक व शास्त्रीय कलाकारों से बच्चों को मिलवाया जाए तथा उनकी कला से बच्चों को परिचित होने का मौका दिया जाए।

- विद्यालय एवं घर के आस–पास पड़ी अनुपयोगी वस्तुओं को कला अनुभव तथा अन्य किसी विषय से जोड़कर विभिन्न उपयोगी एवं सजावटी वस्तुओं का निर्माण किया जा सकता है।
- प्रारंभिक स्तर पर शिक्षक अपनी समझ और अनुभव के अनुसार अन्य विषयों के साथ कला को सीखने–सिखाने के एक माध्यम के रूप में समावेश करें।

## 1.5 कला अनुभव के लिए स्थान की व्यवस्था

आज की स्कूली व्यवस्था के बारे में सोचा जाए तो यह बात विदित होती है कि कुछ विद्यालयों में स्थान की उपलब्धता एक समस्या है। जहां पर 5 कक्षाओं को दो कमरों तक सीमित कर दिया जाए, वहां पर स्थान के बारे में सोचना वाजिब है। ऐसे में अगर कला अनुभव के संदर्भ में सोचें, तो हमारे दिमाग़ में सवाल उठकर आ सकती है कि जब बच्चों के लिए बैठकर पढ़ने की जगह आसानी से उपलब्ध नहीं हो पा रही हो वहां पर बच्चों के लिए कला अनुभव के लिए जगह कैसे मुहैया कराई जाए।

यह विचार करना आवश्यक होगा कि कला अनुभव के लिए विद्यालय में किसी विशेष प्रकार के स्थान एवं व्यवस्था की आवश्यकता होनी चाहिए। यहां पर प्रकाश एवं हवा की उचित व्यवस्था हो और बच्चों के साफ और समतल फर्श हो जिसका इस्तेमाल बच्चे आराम से कर सकें।

अब चुनौती ये है कि किस प्रकार उस जगह को और उपयुक्त और सहज बनाया जाए। जगह को सहज बनाने के लिए विभिन्न सामग्री हमारी मदद कर सकती है। जगह के चुनाव में बच्चों की सुरक्षा अहम है और साफ सफाई भी।

जगह का चुनाव करते हुए इस बात का ध्यान रखना पड़ेगा कि बच्चों को किसी प्रकार की परेशानी न हो और अगर वो ज़मीन पर बैठ कर काम करना चाहे तो इस बात की भी उन्हें सुविधा हो।

विद्यालयों में कला–अनुभव के लिए किसी विशेष प्रकार स्थान एवं व्यवस्था की आवश्यकता नहीं है। कक्षा–कक्ष में बच्चों के द्वारा ही आवश्यकतानुसार विभिन्न प्रस्तुतियाँ और प्रदर्शनों के लिए व्यवस्था करवाई जा सकती है। जैसे– प्रदर्शन कला के लिए किसी भी एक स्थान को बच्चों की सहजतानुसार मंच की तरह प्रयोग किया जा सकता है और आवश्यकता पड़े तो पुरानी वस्तुओं– साड़ी, दुपट्टा, चादर, कुर्सी, मेज आदि का प्रयोग करके बच्चों की मदद करते हुए अस्थाई रूप से स्थान को निर्मित भी किया जा सकता है। इससे केवल स्थान निर्माण ही नहीं होगा बल्कि ये भी कला अनुभव का एक माध्यम बनेगा। इसी प्रकार दृश्य कलाओं के प्रदर्शन के लिए भी कक्षा और विद्यालयों की दीवारों का इस्तेमाल किया जा सकता है। साथ ही विभिन्न अनुपेयागी एवं पुरानी वस्तुओं के प्रयोग से अस्थाई व्यवस्था की जा सकती है।

## 1.6 कला अनुभव के लिए सामग्री–

स्थान एवं व्यवस्था की तरह ही विभिन्न कला अनुभवों से जुड़ी सामग्री के लिए भी अपने आस–पास एवं प्रकृति में उपस्थित वस्तुओं आदि का प्रयोग किया जा सकता है। सामग्री के ऊपर बात करें तो हमें लगता है कि इतनी महंगी सामग्री हम कक्षा में कैसे ला सकते हैं। बच्चों के लिए सामग्री व्यवस्था के इसके अलावा हमारे पास और भी तरीके हैं। पहली बात तो ये है कि कोई भी सामग्री महंगी न हो क्यों कि इस सब सामग्री के साथ बच्चों को काम करना है और बार–बार काम करना है। काम करते वक्त ये भी मुनासिब है कि चीज़ें अस्त–व्यस्त हो और सामग्री टूटे भी। अगर सामग्री महंगी होगी, वो हमें शायद दुख भी हो और हम शायद बच्चें को डाँट भी दें। कठिनाई यह होगी कि या तो हम शिक्षक उस सामग्री को उठाकर डिब्बे में बंद कर देंगे और या फिर हम बच्चों को इतना डरा देंगे कि वो सामग्री का इस्तेमाल करने में ही हिचकने लगें। दोनों ही स्थितियों में हम ऐसा नहीं कर रहे होंगे जिसके लिए हमने कला अनुभव के बारे में सोचा होगा।

बात छोटी है पर उसका प्रभाव ज़्यादा पड़ सकता है। अब एक बात तो यह तय हो गई है कि वैसी सामग्री का हम चुनाव करें जो ज़्यादा महंगी न हो और दूसरी बात यह है कि उस सामग्री को बनाने में अगर बच्चों की भागीदारी हो, तो फिर बात ही कुछ और हो।

कला अनुभव में इस्तेमाल आने वाली ऐसी बहुत सारी सामग्री है जो बच्चों के साथ मिल–बैठकर कक्षा में बनाई जा सकती है। उदाहरण के तौर पर रंगों को ले लीजिए। आपको ऐसे बहुत सारे प्राकृतिक रंग मिल जाएंगे जो आप बच्चों के साथ बैठकर आराम से बना सकते हैं। आप हल्दी से रंग बना सकते हैं, चुकंदर से, गेंदे के फूल से आदि। रंग बनाने की अलग–अलग कई विधियां हैं, जो कुछ बच्चे खुद भी करते होंगे। आप पेंट ब्रश (paint brush) एक तिली और रुई की मदद से बना सकते हैं।

किसी भी तरह के कला अनुभव के लिए एक बहुत ज़रूरी वस्तु है, पुराने अखबार। पुराने अखबार आपको विभिन्न तरह से काम आ सकते हैं, जहां वो अलग–अलग तरह की कलाकृति बनाने के काम आएंगे, दूसरा वो आपको साफ–सफाई, रंग आदि ज़मीन पर न लगे, इसमें भी मदद करेंगे। एक पुराना कपड़ा और पानी की व्यवस्था भी होनी चाहिए। अगर आपके पास ये सामान हैं तो आप कला अनुभव के लिए तैयार हैं।

आप रंग, ब्रश, अखबार, कपड़े के अलावा और भी अलग–अलग सामान जो अनुपयोगी सा लगे, उसका संकलन करके रख सकते हैं जिसका उपयोग आप अलग–अलग समय पर अलग–अलग गतिविधि के लिए कर सकते हैं।

नाटक एवं दृश्य कला के लिए विद्यालय और घर के आस–पास स्थित पेड़–पौधों, मेज–कुर्सी, दरी, अनुपयोगी वस्तुओं, अखबारों, चॉक, कोयला, मिट्टी, कंकड़–पत्थर, कपड़ों, खिलौनों, प्राकृतिक रंगों आदि का सृजनात्मक रूप से प्रयोग किया जा सकता है। जिससे मंचसज्जा, मंच सामग्री, वेशभूषा, मेक–अप, मुखौटे, चित्र, कोलाज आदि का निर्माण किया जा सकता है। संगीत और नृत्य के लिए वातावरण में स्थित विभिन्न ध्वनियुक्त वस्तुओं का इस्तेमाल करते हुए बच्चों की समझ और अनुभव के अनुसार पाठ्यपुस्तक में स्थित कहानी–कविता को लेकर ताल और लय का निर्माण किया जा सकता है और ताल और लय के अनुसार काल्पनिक या जीवन से जुड़े गीत और कविता का भी निर्माण किया जा सकता है। बच्चों द्वारा उनकी समझ, इच्छा और अनुभव के आधार पर नये–नये वाद्य यंत्रों का निर्माण करवाया जा सकता है और ध्वनि कोलाज आदि का निर्माण किया जा सकता है। उसमें नृत्य, अथवा अंग संचालन को

भी शामिल किया जा सकता है। इसमें नृत्य का मतलब किसी खास प्रकार की नृत्य शैली में नहीं है बल्कि शारीरिक संचालन के द्वारा अभिव्यक्ति से है।

इन सभी प्रक्रियाओं को सफल रूप से करने के लिए कक्षा एवं विद्यालय का वातावरण बच्चों के अनुसार सहज, सुगम, भयमुक्त और लोकतांत्रिक बनाना आवश्यक है जहाँ सृजनात्मकता, अन्वेषण, प्रयोगात्मकता एवं जाँच–पड़ताल के लिए उपयुक्त जगह हो।

शैक्षिक भ्रमण के अंतर्गत संभव हो तो कभी–कभार बच्चों को इन सभी कलाओं से जुड़ी प्रस्तुतियों को दिखाने के लिए ले जाया जा सकता है और विद्यालय में भी इसकी व्यवस्था की जा सकती है। आप ये सोच सकते हैं कि कला अनुभव और भ्रमण का आखिर क्या जोड़ है। हम क्यूँ भ्रमण की बात कर रहे हैं ? चलिए एक किस्सा सुनते हैं। कक्षा 10 की बात है। बच्चों को कागज, पेंसिल और रंग निकालने के लिए कहा। फिर बच्चों को यह निर्देश दिया गया कि जो चित्र आपको बहुत पसंद है, जो आपके दिमाग में उसी समय आ रहा हो उसे 5 मिनट में बना कर दिखाएँ। समय सीमा इसलिए कम रखी गई ताकि बच्चों के दिमाग में मन पसन्द चित्र को लेकर जो अवधारणाएं हैं वह कागज पर उतर आएँ। गतिविधि के बाद जो कलाकृतियाँ पन्ने पर उतर कर आयीं , उनमें से 70 प्रतिशत कलाकृतियाँ थी जिससे हम सब वाकिफ है। पन्ने के ऊपर के तरफ बने तीन पहाड़, पहाड़ों के बीच में से निकलता पीला सूरज, पास से बहती नीली नदी, आसमाँ में उड़ते तीन पंछी, नदी के एक तरफ घर, घर के पास पेड़ और नदी के दूसरी तरफ एक मंदिर और मंदिर पर लगा एक तिकोण झंडा। और कहीं किसी चित्र में शायद आपको तैरती हुई मछलियाँ मिल जाये। लगभग 70 प्रतिशत बच्चों का पसंदीदा चित्र होगा। अब हम अगर अपने बारे में सोचें तो हो सकता है कि पाँच मिनट में बनाने के लिए हमारे दिमाग में भी यही चित्र सुझे। पर ऐसा क्यों है। यह सोचने का सवाल है। जब 70 प्रतिशत लोगों की कोई भी पसंद एक नहीं हो सकती। चाहे खाना हो, किताब हो, रंग हो आदि तो फिर भला पसंदीदा चित्र और उसे बनाने की शैली में एकरुपता क्यों। यह सवाल हमने बच्चों से भी किया। जानना चाहा कि जब वे चित्र बना रहे थे तो उनके दिमाग में क्या आ रहा था ? बच्चों ने बताया कि वे प्रकृति के बारे में सोच रहे थे तो यह चित्र उनके दिमाग में आ गया। एक और बात है यह गतिविधि मैंने किसी पहाड़ी वाले क्षेत्र में की हो ऐसा जरुरी नहीं। यह गतिविधि अलग–अलग जगह पर अलग–अलग समय में अलग–अलग समूह जिनमें शिक्षक भी शामिल थे कराया। और हर जगह एक ही नतीजा निकला। यह सवाल सोचने वाला है कि आखिर सब जगह आपको एक ही जैसे चित्र क्यों मिलते हैं। हम अगर एक अच्छे कला अनुभव के बारे में बात करें तो उसकी सबसे बड़ी विशेषता है कि हर व्यक्ति को अपना एक नजरिया बनाने का मौका मिले और वह अपने अनुसार कागज पर लकीरों और रंगों से अभिव्यक्त कर पाएँ। विचारों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति ही कला अनुभव का मुख्य उद्देश्य है जो तीन पहाड़ो वालो तस्वीर हमारे दिमाग में आती है इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि बचपन में हमें ऐसा ही चित्र बनाना सीखाया गया हो इसलिए हम सब ऐसा ही चित्र बनाते चले आ रहे हैं। शैक्षिक भ्रमण बच्चों को अपना नजरिया ढूढने में मदद करती है ।

अपने आसपास की होनेवाली अलग–अलग वस्तुओं एवं घटनाओं के बारे में अपना नजरिया बनाने में हमें मदद करना चाहिए। विभिन्न स्थानीय या क्षेत्रीय कलाओं से जुड़े लोक एवं शास्त्रीय कलाकारों से समय–समय पर भेंट और संवाद कराया जा सकता है, साथ ही, विशेष कलाकार द्वारा कर्यशाला आदि के ज़रिये अनुभव भी प्रदान किया जा सकता है। इससे न केवल बच्चों को अपने व्यक्तित्व के विकास में मदद मिलेगी वरन् उनसे सामजिकता की

भावना का भी विकास होगा और साथ ही स्थानीय लोक एवं शास्त्रीय कलाओं और उनसे जुड़े कलाकारों के बारे में जानकारी मिलेगी, सांस्कृतिक विरासत को समझ सकेगें तथा इनके प्रति सम्मान की भावना की प्रेरणा मिलेगी।

## 1.7 समेकन

चूँकि कला शिक्षा में सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में प्रकृति के साथ संबंध तथा सामाजिकता अन्तर्निहित है जिससे प्रकृति और समाज के प्रति संवेदनशीलता की भावना विकसित होती है। प्रारंभिक स्तर पर इस बात को भी समझना बहुत आवश्यक है कि कला–अनुभव के अंतर्गत बच्चों को कला के विभिन्न स्वरूपों से सहज रूप से अवगत कराने के साथ–साथ उन्हें कक्षा में ऐसे अवसर प्रदान किए जाएँ कि वे रचनात्मक तरीके से स्वयं को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त कर सकें तथा उनको अपनी अन्तर्निहित प्रतिभा को पहचानने व निखारने का अवसर मिले। इसके लिए कक्षा का वातावरण खेलपूर्ण व लोकतांत्रिक हो। साथ ही, शिक्षक भी अपनी शिक्षण प्रक्रिया में नवाचार लाने के निरंतर प्रयास करें ।

## 1.8 प्रदत्त कार्य

(अ) पाठ्यपुस्तक पर आधारित कला–अनुभव पर पाठ–योजना बनाएं व उसे कक्षा में अपने समूह के साथ करें।

- आपकी पाठ–योजना के क्रियान्वयन के दौरान बच्चों ने क्या–क्या सीखा और इस प्रक्रिया में उनकी भागीदारी कैसी हो?
- पाठ–योजना लागू करते समय आपको किस प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ा?
- अपनी चुनौतियों का सामना करने के लिए अपनी पाठ–योजना में किस प्रकार के बदलाव/सुधार लाएंगे?

(ब) बदले हुए पाठ–योजना को कक्षा में फिर से कराएं और अपने अनुभव पर आधारित एक रिपोर्ट लिखें–

- स्थानीय वातावरण में ऐसी वस्तुएँ खोजें जिनसे प्राकृतिक रंगों का निर्माण किया जा सकता हो। किसी स्थानीय व्यक्ति की मदद लेकर अपनी कक्षा में रंग बनवाए और बच्चों से निर्मित रंगों का कला–अनुभव की प्रक्रिया द्वारा उपयोग करवाएं। पूरी प्रक्रिया पर एक रिपोर्ट लिखें।
- आप अपनी कक्षा में उन सहपाठियों की पहचान करें जो किसी लोक या शास्त्रीय कला से संबंध रखते हों। उनसे बात करें और किसी दो व्यक्ति और उनकी कला के बारे में एक संक्षिप्त लेख लिखें।
- आप अपनी कक्षा में उन सहपाठियों की पहचान करें जो किसी लोक या शास्त्रीय कला से संबंध रखते हो। उनसे बात करें और किसी दो व्यक्ति और उनकी कला के बारे में एक संक्षिप्त लेख लिखें।
- कला शिक्षा व कला–अनुभव से जुड़ी पुस्तकें खोजें। कोई एक पुस्तक चुनकर उसे पढ़ें एवं समूह में उस पर चर्चा करें। उस चर्चा पर आधारित पुस्तक की समीक्षा लिखें।

# इकाई – 2

# प्रदर्शन कला (प्रायोगिक)


2.1 परिचय

2.2 उद्देश्य

2.3 पूर्व अनुभव

2.4 प्रदर्शन कला के विभिन्न तत्त्व

2.4.1 संगीत : गायन, वाद्य

2.4.2 नृत्य : लोक नृत्य, शास्त्रीय नृत्य (सृजनात्मक)

2.4.3 रंगमंच : लोक रंगमंच, आधुनिक रंगमंच, कठपुतली कला

2.5 कला के विभिन्न रूपों का महत्व

2.6 प्रदर्शन कला, योजना, तैयारी, प्रस्तुतिकरण

2.7 समेकन

2.8 प्रदत्त कार्य


## 2.1 परिचय

प्रथम सत्र के अध्यायों में आप दृश्य कला के सैद्धांतिक एवं प्रायोगिक पक्ष से परिचित हो चुके हैं। साथ ही प्रदर्शन कला के विभिन्न आयामों से भी हम अवगत हो चुके हैं। जिन्हें आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक रूपों में प्रदर्शित किया जाता है। संगीत (गायन और वादन), लोक नृत्य, शास्त्रीय नृत्य, नाट्य, लोक–नाट्य के साथ–साथ कठपुतली कला प्रदर्शन कला के महत्त्वपूर्ण अंग माने जाते हैं।

बच्चों की किलकारी, कोयल की कूक, समुद्र का शोर, नदियों की कलकल, बारिश की झमझम से हमारा गहरा जुड़ाव है। प्रकृति में चहँओर बिखरे इन्हीं ध्वनि ने हमारे भीतर संगीत की स्वर–लहरियों को गुंजायमान किया है और जीवन के साथ कदमताल करता हुआ संगीत कुछ इस तरह से हमारे भीतर रच–बस गया है, जिसे किसी भी तरह से अलग नहीं किया जा सकता है। संगीत वस्तुतः लय और ताल के समन्वय को कहा जाता है, जिसे स्वरयुक्त, लयात्मक, आंगिक चेष्टाओं से प्रदर्शित किया जाता है। इसमें हम ध्वनि, स्वर, सप्तक, अलंकार, लय, ताल, वाद्य, लोकगीत, लोकवाद्य, लोक नृत्य और लोक नाट्य की एक समझ विकसित करेंगे, जिससे विद्यालयों में विभिन्न विषयों के प्रभावी शिक्षण में प्रदर्शन कला को सहज, सरस माध्यम के रूप में शामिल किया जा सके।

अनायास ही किसी बच्चे को गुनगुनाते या फिर वाद्ययंत्रों की ध्वनियों पर पाँव को थिरकाते देखा जा सकता है। पशु–पक्षियों के आवाज की नकल एवं माता–पिता और शिक्षकों के चलने, उठने, बैठने, बोलने की हू–ब–हू नकल करते देखा जा सकता है, जिसे अभिनय कला के प्रति स्वाभाविक आकर्षण के रूप में हम देख सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रदर्शन कला के प्रति हमारा स्वाभाविक आकर्षण है या यूँ कहें कि यह हमारे जीवन का अभिन्न अंग है। इस इकाई के दूसरे हिस्से में लोक रंगमंच, आधुनिक रंगमंच एवं कठपुतली कला को देखने दिखाने की प्रक्रिया में हमारी क्या भूमिका है, इस पर चर्चा की गई है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 में भी इसका उल्लेख किया गया है कि कला को न सिर्फ पाठ्यक्रम का एक स्थायी हिस्सा बनाना चाहिए अपितु कला द्वारा अन्य विषयों को सीखने–सिखाने का माध्यम भी बनाना चाहिए। अतः हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम कला शिक्षा के सैद्धांतिक एवं प्रायोगिक पक्षों पर समान रूप से अपनी समझ बनाएँ। साथ ही हम कला प्रयोग की कुशलता एवं इसकी बारीकियों से स्वयं परिचित हों एवं इनका उपयोग प्रभावी कक्षा संचालन के लिए एक माध्यम के रूप में कर सकें।

## 2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन उपरान्त आप–

- ध्वनि/स्वर एवं उसके भेद को समझ सकेंगे।
- संगीत की तीनों विधाओं– गायन, वादन एवं नृत्य के सभी पक्षों को समझ सकेंगे।
- लोक संगीत/लोक नाट्य को पहचानना एवं विभिन्न अवसरों पर प्रदर्शन/प्रस्तुती कर पाने की योग्यता का विकास कर सकेंगे।
- नाट्य कला के विभिन्न प्रकारों को समझ सकेंगे एवं प्रस्तुत कर पाने की क्षमता का विकास कर सकेंगे।
- आस–पास की लोक गीत, लोक नृत्य एवं लोक नाट्य का परिचयात्मक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रदर्शन कला को सीखने–सिखाने के सशक्त माध्यम के रूप में आप अपनी समझ विकसित कर सकेंगे।
- पुतली कला को समझ सकेंगे एवं शिक्षण –अधिगम प्रक्रिया में पुतली कला को माध्यम के रूप में प्रयोग करने की क्षमता विकसित कर सकेंगे।
- बच्चों में अन्वेषण एवं अभिव्यक्ति द्वारा उनकी संवेदनाओं का विकास कर सकेंगे।
- संगीत, नृत्य और नाटक के साधारण रूपों के माध्यम से अभिव्यक्ति के कौशल का विकास करना।

## 2.3 पूर्व अनुभव

बच्चे प्रदर्शन कला की विभिन्न विधा सीखते कैसे हैं, यह जानने के पहले यह जानना ज़रूरी है कि बच्चे सीखते कैसे हैं, हर बच्चे की अपनी पसंद, नापसंद, रूचियों और व्यवहार के अलग–अलग तरीके होते हैं। हर बच्चा अपने आप में विशेष होता है व समकक्ष आयु वर्ग के बच्चों में कुछ चीज़ें एक–जैसी पाई जाती है। जैसे बच्चे के जन्म से ही उसके सीखने की प्रक्रिया का आरम्भ हो जाता है। स्कूल आने से पहले उसके पास बहुत से अनुभव होते हैं और ज्ञान के कुछ प्रकारों का आधार भी होता है। बच्चे कोरी स्लेट नहीं होते हैं, बच्चे पहले से जो

जानते व समझते हैं उसके आधार पर ही आगे सीखने की योजना बनानी चाहिए। प्रदर्शन कला में जहां तक संगीत का सवाल है तो बच्चों के चारों ओर जो संसार है, वह सर्वप्रथम प्रकृति का ही संसार है, जिसमें परिघटनाओं की असीम विविधता है, जिसका सौन्दर्य अथाह है। बच्चा इनसे जो सीखता है, वह विलक्षण होता है। प्रकृति के इस विलक्षण सौन्दर्य से ही बच्चों का सीखना आरम्भ होता है। बच्चे प्रकृति की चीज़ों को ध्यान से देखते व सुनते हैं व अपने स्तर पर अनुभूति करते हैं, आवश्यकता होती है सिर्फ माहौल देने की। संगीत सीखने का आरम्भ सुनने से ही होता है। जब वे प्रकृति की विविध ध्वनियों का बार–बार सुनते हैं तो उनके दिमाग़ में उसकी एक छवि बनने लगती है जिसका सिखाते समय शिक्षक को पता नहीं चलता लेकिन कुछ समय बाद बच्चे उन धुनों को गाने लगते है, संगीत पर थिरकने लगते है। शिक्षक यह नहीं पकड़ पाता कि बिना सिखाए बच्चों ने कैसे सीखा, तो सुनना संगीत शिक्षक की पहली सीढ़ी होती है।

अपनी बात को असरदार ढंग से कहना बच्चा नाटक द्वारा सीखता है और नृत्य के माध्यम से अपने भावों को विभिन्न आंगिक मुद्राओं व भाव–भंगिमाओं के साथ लय–ताल में प्रस्तुत करता है। आपने समाज में प्रदर्शन कला के रूपों के अनेक अवसरों पर प्रस्तुति के दौरान बच्चों को उनके प्रति आकर्षित होते हुए देखा होगा। यहां तक कि किसी घर में बहुत से ऐसे कार्य जैसे– कपड़े धोने में छप–छप की आवाज जब एक निश्चित अन्तराल व आवृति के रूप में बच्चों के कानों तक लय का रूप लिए पहुंचती है तो बच्चों का शरीर उस ताल पर हिलने लगता है, जिसे नृत्य कला के अंकुर के रूप में देख सकते हैं। यही नहीं, कम उम्र के बच्चे जब भी रेडियो, दूरदर्शन, टेप रिकॉर्डर, मोबाइल आदि से या परिवार में मांगलिक कार्यक्रमों पर जब बैण्ड बजता हुआ सुनते हैं तो उनका शरीर थिरकने लगता है, वे अपने अन्दर आए आवेग को रोक नहीं पाते और शारीरिक हलचल से इसे प्रकट करते हैं। उनके हृदय में लय, ताल, गति और ध्वनि के प्रति आकर्षण नैसर्गिक होता है। नृत्य कला सुनने व अवलोकन पर ज़्यादा निर्भर होती है। इसी प्रकार नाट्य कला यानी भाषा और अभिनय के द्वारा अभिव्यक्ति में दृश्य व श्रव्य दोनों इन्द्रियों का प्रमुख आधार होता है। कई बार हम बच्चों को बड़ों की भूमिका निभाते, अपनी तरह से संवाद करते हुए तथा अपने कल्पना के आनन्द में डूबे हुए देखते हैं। बचपन में वे अपने परिवारजनों, (माता, पिता, भाई, बहन, दादा, दादी) एवं शिक्षकों आदि जिनके संपर्क में आते हैं और जिसका अवलोकन उन्होंने किया है, उसी पात्र के शब्दों व लहज़े का अनुकरण करते हुए वे अपने आप को व्यक्त कर रहे होते हैं। इसी प्रकार वे अपने परिवेश में विभिन्न पशु–पक्षियों, यातायात के साधनों एवं वस्तुओं की आवाजों को सुनते हैं व अवलोकन के आधार पर कभी खेल–खेल में कभी नृत्य करते एवं अपने हाव–भाव के साथ अभिनय करते हुए अपने आप को अभिव्यक्त करते हैं।

## 2.4 प्रदर्शन कला के विभिन्न तत्त्व

प्रदर्शन कला के अन्तर्गत वे सभी कलाएँ समाहित हैं, जिन्हें आंगिक, वाचिक व आहार्य और सात्विक के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है। साधारणतः जिन्हें देखा, सुना या प्रदर्शित किया जा सके वे सभी कलाएँ प्रदर्शन कला के रूप

में शामिल किया जा सकता है। जैसे– संगीत, नाटक, नृत्य, पुतली कला, मूक अभिनय, कविता वाचन, कहानी सुनाना, भाषण कला आदि। संगीत में गायन और वादन दोनों रूपों को प्रदर्शन किया जाता है। लोक संगीत, लोक नृत्य, लोक नाट्य जिनका सीधा संबंध लोक चेतना से है, प्रदर्शन कला का महत्त्वपूर्ण अंग है। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हमारे जीवन के विभिन्न पहलूओं को कला प्रभावित करती है। प्रदर्शन कलाएँ शिक्षार्थियों के शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक एवं आध्यात्मिक विकास का आधार है। इनके माध्यम से विचार एवं भावनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति होती है। साथ ही शिक्षार्थियों में आत्मविश्वास एवं सृजनशीलता का विकास होता है। प्रदर्शन कला को हम सामान्यतः समूहों में कार्य करते हैं, जिससे समूह भावना, अनुशासन, समन्वय, समानता, धैर्य और लगाव की सोच और रचनात्मक एवं सकारात्मक भावना का विकास होता है। इसमें जीवन की विभिन्न कठिनाइयों व परिस्थितियों का सामना करनेका अनुभव प्राप्त होता है। जिससे सृजनात्मक सोच और रचनात्मक एवं सकारात्मक व्यवहार का विकास होता है। प्रदर्शन के पश्चात् कलात्मक व सृजनात्मक संतुष्टि का अनुभव होता है जो हमारे व्यक्तित्व को निखारने में अहम भूमिका निभाता है।

ऊपर हमने कला को एक विषय के तौर पर रखते हुए इसे समझने की कोशिश की है और इसके अनुभव से गुजरते हुए व्यक्तिगत एवं सामाजिक समझ और जुड़ाव की बात की है । साथ ही इस प्रक्रिया से होने वाले संभावित व्यक्तिगत और सामूहिक/सामाजिक लाभों की ओर भी हमारा ध्यान गया, जिससे कला हमारे जीवन के अभिन्न अंग के रूप में दिखाई देती है। अब आगे हम शिक्षा में कला की बात करते हुए प्रदर्शन कला के मुख्यतः तीन स्वरूप– संगीत, नृत्य एवं नाटक की विस्तृत चर्चा करते हुए शिक्षा और बाल विकास में इसकी महत्ता और उपयोगिता को समझने की कोशिश करेंगे।

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि संगीत, नृत्य और नाटक कला हमारे जीवन का अभिन्न अंग है। कोयल की कूक, नदी का शोर, बारिश की टिप–टिप आदि सबमें संगीत विद्यमान है। अपने आसपास देखें तो पंखे के चलने और मशीन की खट–खट में भी आपको सुर और ताल मिलेगा। बच्चों के बारे में बात करें तो उनकी ज़िन्दगी में संगीत स्वतः शामिल है। उदाहरण के लिए आप बच्चों को कभी खेलते हुए देखें तो आप पायेंगे कि खेलते समय वो बहुत अजीब से लगने वाले, अटपटे शब्दों से बने गीत गा रहे होते हैं। आप बच्चे को किसी भी काम में तल्लीनता से लगे देखें तो अक्सर आप बच्चे को खुद में ही कुछ गुनगुनाते हुए पायेंगे। बच्चों और संगीत का एक सहज ही रिश्ता होता है। ये उनकी अभिव्यक्ति का एक माध्यम है। माँ अक्सर बच्चे को सुलाने–बहलाने के लिए लोरी सुनाती है, गुनगुनाती है और रोता हुआ बच्चा चुप हो जाता है, नींद की आग़ोश में खो जाता है। शायद यहीं से बच्चे का संगीत से रिश्ता शुरू होता है जो पूरी उम्र उसके साथ रहता है। उसके काम में उसके साथ गुनगुनाता है। उसके खेल में खिलखिलाता है। बाल विकास में आपने यह पढ़ा भी होगा कि किस प्रकार बाल गीत बच्चों की भाषा के विकास में एक अहम भूमिका निभाता हैं।

इसी प्रकार नृत्य और नाट्य का सहज प्रवाह भी हमारे जीवन में है। भिन्न–भिन्न अवसरों पर गाए जाने वाले गीत एवं संगीत की धुनों पर हमारे थिरकते पांव इस बात के गवाह

हैं। इसी प्रकार किसी बच्चे का संगीत को सुनकर अपने हाथ–पैर हिलाना। खुशी के आवेग में शरीर का खुद–ब–खुद थिरकने लगना। नाचना केवल हाथ–पैर को हिलाना भर ही नहीं है बल्कि ये स्वअभिव्यक्ति का एक माध्यम है। किसी विशेष प्रकार के नृत्य को बकायदा सीखना पड़ता है। उसके अपने कुछ सिद्धांत होते हैं, जिनको सीखे–समझे बिना आप उस नृत्य को नहीं कर सकते, मगर जीवन में अभिव्यक्ति हेतु नृत्य के लिए किसी सिद्धांत, किसी व्याकरण की आवश्यकता नहीं है। ये तो हमारी ज़िन्दगी का हिस्सा है जो कि विभिन्न अवसरों पर खुद–ब–खुद हो जाता है। ये खुद–ब–खुद हो जाना ही अभिव्यक्ति है जो उस वक्त आपके विचारों, भावनाओं को शारीरिक रूप से प्रकट करता है। नृत्य हमारी भावनाओं को उजागर करने में मदद करता है। शरीर के हिलने से मस्तिष्क में भी हरकत होती है और वो बेहतर काम करने के लिए सक्षम होता है। इस बात को वैज्ञानिक तौर पर भी साबित किया जा चुका है। मनोवैज्ञानिकों ने अपने शोध के द्वारा इस बात के भी प्रमाण दिए हैं कि नृत्य के द्वारा गणितीय समझ में भी निखार आता है। इसी आधार पर कहा जा सकता है कि अगर कक्षा–कक्ष में बच्चें को ऐसे अवसर दिए जाएं जहां उन्हें नृत्य के द्वारा अभिव्यक्ति के मौके मिले तो वे केवल शारीरिक रूप से ही नहीं बल्कि भावनात्मक एवं मानसिक रूप से भी सक्षमता और अच्छी सेहत की तरफ बढ़ेंगे।

वस्तुतः कला का संबंध लोक व्यवहार, लोक आचार, लोक संस्कृति, वेश–भूषा, खान–पान, तीज–त्योहार एवं मानव क्रियाशीलन से है। कला मुख्य रूप से इन्हीं लोकाचारों और व्यवहारों की उत्पत्ति है। कला हमारे दैनिक जीवन की घटनाओं, व्यवहारों, अनुभूतियों एवं संवेदनाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति है। जीवन की घटनाओं, अनुभूतियों और लोकचार एवं लोक व्यवहारों का वास्तविक अनुकरण या प्रस्तुतिरकरण, नाट्य कला के अन्तर्गत आता है। आस–पास की उच्चारित ध्वनियों, एवं पशु–पक्षी के साथ–साथ मानव क्रियाशीलनों की नकल भी बच्चों के द्वारा की जाती है जिसे अभिनय कला के वास्तविक रूप में देखा जा सकता है। पशु–पक्षियों, पेड़–पौधे एवं भिन्न–भिन्न मुखाकृतियों (शेर, बंदर, राक्षस, चुड़ैल) आदि के मुखौटे को अपने चेहरे पर रख विभिन्न प्रकार की ध्वनियों और हाव–भाव द्वारा मुखौटे के पात्रों को जीवंत बनाने का प्रयास करना, खिलौनों से बातचीत करना एवं गुड़ियों को अपनी आवाज देखकर उससे जीवंत बनाना, शिक्षकों की ओर माता–पिता की नकल करना, ये सभी बच्चें के खेल हैं जिनको नाटकीय खेल भी कहा जा सकता है। इन खेलों के द्वारा बच्चा केवल नकल ही नहीं करता बल्कि बड़ों की भूमिका में आकर दुनिया को अपनी नज़र से देखने और समझने की कोशिश करता है। जीवन के विभिन्न आयामों को जांचने–परखने की कोशिश करता है। किसी भूमिका में आकर वह केवल उस भूमिका को निभाता ही नहीं है बल्कि उसके माध्यम से उस चरित्र के मनोभावों और स्थितियों का अनुभव करते हुए उसे जीने की कोशिश करता है, उसका निरीक्षण भी करता है, अपनी समझ के अनुसार समाधान ढूंढता है, निर्णय लेता है, अपने पूर्व अनुभवों के आधार पर नये अनुभव लेते हुए नये विचार और दृष्टिकोण गढ़ता है, मानसिक और भावनात्मक रूप से जुड़ते हुए मानवीय संवेदनशीनलता की ओर बढ़ता है।

### 2.4.1 संगीत : गायन एवं वादन :

भारतीय जीवन के पग–पग में संगीत व्याप्त है। जन्म से लेकर मृत्यु तक संगीत हमारे साथ बना रहता है। जिस क्षण का बालक इस संसार से प्रथम परिचय होता है तो संगीत द्वारा (रोने के रूप में) अपना आभार प्रकट करता है। सच तो यह है कि संगीत के स्वर प्रकृति में सर्वत्र भिन्न–भिन्न रूपों में बिखरे पड़े हैं। चिड़ियों के कलरव, कोयल की कूक, बारिश की

झमझम, झरनों की झरझर, रम्भाती गायें, बलखाती नदियाँ, इठलाती हवाएँ, पपीहे की सदाएँ। इस तरह संगीत हमारे रोम–रोम रक्त की तरह प्रवाहित होने वाली सदानीरा है। जब किसी भाषा का विकास नहीं हुआ था, संगीत तभी से हमारे जीवन का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। मैक्समूलर ने कहा है कि ''संगीत का जन्म भाषा के पूर्व हुआ है।''

जीवन के विशेष अवसरों का आरम्भ और अन्त संगीत से होता है। ऐसा कोई त्योहार नहीं जहाँ संगीत न हो, बल्कि संगीत के बिना त्योहार अधूरा रह जाता है। छोटा–बड़ा कोई भी उत्सव मनाया जाए, संगीत आवश्यक हो जाता है, चाहे वह प्रार्थना या स्वागत गान तक ही क्यों न हो। कठोर परिश्रम से थके मनुष्य को सायंकाल बाँसुरी की सुरीली धुन पूरे थकान को कम कर देता है। खेतों में तैयार फसल को देखकर या ऋतुओं में जब परिवर्तन होता है तो मन के अन्दर संगीत हर्षोल्लास के साथ स्वतः प्रकट होने लगता है। यह हर्षोल्लास के साथ–साथ चिरस्थायी आनंद प्राप्ति का भी मार्ग प्रशस्त करता है। इसलिए संगीत साधना, भक्ति का भी अभिन्न अंग है। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के शब्दों में ''हमारे साधु–संतों की संगीत साधना का ही प्रभाव था कि कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, तुकाराम, नरसी मेहता ऐसी कृतियाँ कर गए जो हमारे लिए और संसार के साहित्य में सर्वदा अपना विशिष्ट स्थान रखेंगी। वस्तुतः संगीत हमारे सांस्कृतिक विरासत का वाहक है।''

संगीत भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। संगीत उस त्रिवेणी संगम को कहा जाता है, जिसमें गीत, वाद्य और नृत्य समाहित है। ''गीतं, वाद्यं, नर्त्तनं, य त्रयं संगीत मुच्यते, किमन्यदस्ता परिषद्ः श्रुति प्रसाद नतः संगीतात्''। इस तरह संगीत सुर और ताल युक्त वह ललित कला है जिसमें गायन, वादन और नृत्य तीनों समाहित हैं और एक दूसरे के पूरक भी। संगीत एक बड़ी औषधि भी है। अमेरिका के प्रसिद्ध डॉ. हिचसन ने विभिन्न प्रकार की संगीत–ध्वनियों की सहायता से अनेक प्रकार के असाध्य रोगों की सफल चिकित्सा की है।

तीनों कलाएँ एक दूसरे से स्वतंत्र होते हुए भी गायन के अधीन वादन एवं वादन के अधीन नर्तन है। अतः इन तीनों कलाओं में 'गायन' को ही प्रधानता दी गई है। स्वर, लय, ताल का आश्रय लेकर गीत मानव की भावनाओं को व्यक्त करता है, वादन गीत का सहायक होता है और नृत्य उस भावना को मूर्त रूप प्रदान करता है।

वर्तमान समय में ये तीनों शाखाएँ अपने–अपने रूप में विकसित हो चुकी हैं। जैसे– गायन– शास्त्रीय, सुगम लोक संगीत के रूप में विकसित हो रहा है।

**वादन–** एकलवादन (सोलो) वृन्दवादन (ऑरकेस्ट्रा) अनुगामी वादन (संगत) तीनों रूप में विकसित हो रहा है।

गायन का संबंध नाभि व कंठ से है। वादन का यंत्र से तथा नृत्य का संबंध शारीरिक मुद्राओं से है। संगीत के दो रूप माने गए हैं–

1. **क्रियात्मक संगीत–** संगीत का क्रियात्मक रूप वह है हम जिसे कानों से सुनते हैं अथवा आँखों से देखते हैं। दूसरे शब्दों में क्रियात्मक संगीत में गाना, बजाना और नाचना आता है। गायन और वादन को हम सुनते हैं और नृत्य को देखते हैं।

**2.संगीत शास्त्र–** संगीत शास्त्र के इस भाग में संगीत, ध्वनि, स्वर लय, ताल व संगीत के इतिहास आदि का अध्ययन किया जाता है।

भारतीय संगीत के मुख्य दो प्रकार हैं– शास्त्रीय संगीत और भाव संगीत। शास्त्रीय संगीत उसे कहते हैं जिसमें नियमित शास्त्र होता है और जिसमें कुछ खास नियमों का पालन करना आवश्यक होता है। इसमें राग नियमों का पालन करना पड़ता है, न करने से राग हानि होती है। इसमें लय–ताल की सीमा में रहना पड़ता है। गीत का कौन सा प्रकार हम गा रहे हैं, उसका निर्वाह भी उसी प्रकार होना चाहिए। भाव संगीत में शास्त्रीय संगीत के समान न कोई बन्धन होता है और न उसका नियमित शास्त्र ही होता है। भाव संगीत का मुख्य उद्देश्य रंजकता है। इसमें कहीं कहीं शास्त्रीय संगीत का सहारा भी ले लिया जाता है। भाव संगीत तीन भागों में विभाजित है– (1) चित्रपट संगीत (2) लोक संगीत (3) भजन आदि।

- **चित्रपट संगीत–** व्यापक अर्थ में जिस किसी गीत का प्रयोग चित्रपट (सिनेमा) में हुआ हो इसे चित्रपट गीत कहते हैं।
- **लोक संगीत–** लोक गीत में हमारे लोक जीवन, लोक व्यवहार, लोकाचार एवं वर्षों से चले आ रहे रीति–रिवाजों की झाँकी मिलती है। इसके अन्तर्गत शादी के गीत, विभिन्न संस्कारों पर गाए जाने वाले गीत, चैती, कजरी, बिरहा, लोरी, फाग, झूला गीत आदि आता है।
- **भजन–** इसमें ईश्वर के गुण–गान या उनकी प्रार्थना की जाती है। भावानुकुल शब्दों द्वारा गीत रचना आदि इनकी विशेषताएँ होती हैं। भजन अधिकतर दादरा और कहरवा ताल में होते हैं।

**गतिविधि–**

- शिक्षक द्वारा कोई भी गीत स्वर एवं लय में गाकर सुनाया जाएगा।
- छात्र/छात्राओं द्वारा बाल गीत/माँ शारदे कहाँ तू– प्रार्थना को गाकर सुनाना।
- बच्चों को अपनी पसंद का कोई एक गीत को गाने के लिए कहें।
- गीत को सुनकर समीक्षा करना एवं करवाना।

**बाल गीत**

लकड़ी की काठी, काठी पे घोड़ा,
घोड़े की दुम पे, जो मारा हथौड़ा,
दौड़ा घोड़ा दौड़ा, घोड़ा दुम उठा के दौड़ा।

घोड़ा पहुँचा चौक में, चौक में था नाई,
घोड़े जी की नाई ने, हजामत जो बनाई
तक–बक–तक–बक, तक–बक–तक–बक
दौड़ा दौड़ा दौड़ा, घोड़ा दुम उठा के दौड़ा।

परन्तु जब हम शिक्षा में कला की बात करते हैं तो हमारा ध्यान इसके सैद्धांतिक रूप के बजाय इसके व्यवहारिक रूप की ओर जाता है। जब हम बड़े–बड़े संगीतज्ञों को गाते–बजाते देखते–सुनते हैं और फिर शिक्षा में इसको जोड़कर देखते हैं तो एक शिक्षक के तौर पर स्वयं को बहुत असमर्थ पाते हैं। इस असमर्थता के कारण या तो हम कक्षा में इस विषय को हाथ ही

नहीं लगाते और यदि किन्हीं विशेष अवसरों पर हाथ लगाते भी हैं तो केवल किसी गाने आदि की नकल करते ही दिखाई देते हैं। ये नकल भी बच्चों के साथ कैसे कराई जाती है और प्रदर्शन के दौरान इस नकल की हालत को भी हम भली–भांति जानते, समझते हैं। इन विशेष अवसरों से पहले और न ही इनके बाद हमारे दिमाग में कक्षा में कला को लेकर कोई तस्वीर बनती है और न ही हमारी ऐसी कोशिश ही रहती है। इसकी वजह ये नहीं है कि हम ऐसा करना नहीं चाहते बल्कि इसका विशेष कारण जो दिखाई देता है, वह है, इस विषय को लेकर हममें अनुभव और अवसर की कमी।

अब अगर हम प्रारंभिक स्तर पर कक्षा–कक्ष में संगीत और वाद्य की बात करते हैं तो हम सुर–ताल–सरगम आदि के सैद्धांतिक रूपों की बात तो बिल्कुल ही नहीं करेंगे। यहां हम उस संगीत और वाद्यों की बात करेंगे जो हमारे आस–पास स्थित है। हमारे वातावरण में लहराता है। जो हमारे अंग–अंग में बसा हुआ है और हमारे जीवन का एक हिस्सा है। जिसकी शुरूआत माँ की लोरी, उसकी गुनगुनाहट और थपथपाहट से होती है। खेल गीतों से होती है। बाल गीतों से होती है। अनुप्रासों (Tongue Twister) और लोकगीतों से होती है। वर्तमान संदर्भ में फिल्मी गीतों का भी इसमें बहुत योगदान है। अगर हम बच्चें की मदद से इन लोरियों, खेल–गीतों, बाल–गीतों, लोक–गीतों आदि को इकट्ठा करें और कक्षा में गाऐं तो आप देखेंगे कि बच्चे कितनी सहजता से इन गीतों को गाते हैं और उसमें शामिल होते हैं। साथ ही इससे आपके पास इन गीतों का खजाना भी जमा हो जाएगा। प्रारंभिक तौर पर इन गीतों को गवाया जा सकता है। बाद में इन गीतों के आधार पर बच्चों द्वारा नये गीत रचे जा सकते हैं।

**गतिविधि :**

- प्रारंभिक स्तर पर विद्यार्थियों से अपने आस–पास सुनाई देने वाले गीतों को गाने को कहा जा सकता है, जिनमें फिल्मी गीत, बाल गीत, खेल गीत, लोक गीत, शादी के गीत तथा अन्य त्योहारों तथा रीति–रिवाजों के दौरान गाये गए गीत हो सकते हैं।
- विद्यार्थियों को अपने आस–पास के वातावरण, घर, स्कूल आदि से ऐसी सामग्रियां इकट्ठी करने को कहा जा सकता है जिनसे विभिन्न तरह की ध्वनियां उत्पन्न हो सकती हों और उनको कक्षा में लाकर बजाने केा कहा जा सकता है। विद्यार्थियों को छोटे समूहों में बांटकर अपनी क्षमतानुसार उन ध्वनि यंत्रों का इस्तेमाल करके ऑर्केस्ट्रा तैयार करने को कहा जा सकता है। साथ ही विद्यार्थियों को किसी भी गीत के साथ इन ध्वनि यंत्र को बजाने या संलग्न करने को कहा जा सकता है।
- विद्यार्थियों को विभिन्न विषयों पर स्वयं भी गीत लिखने और उनको अपनी क्षमता अनुसार लयबद्ध करने को कहा जा सकता है और उसकी कक्षा स्तर पर सबके सामने प्रस्तुति भी की जा सकती है तथा गीत लिखने की प्रक्रिया, प्रशंसा, समीक्षा, विश्लेषण आदि करते हुए उस पर चर्चा भी की जा सकती है।

प्रारंभिक स्तर पर बातचीत के द्वारा प्रशिक्षु के अनुभव के आधार पर प्रशिक्षुओं से ही बाल एवं लोक`गीत आदि निकलवाएं और गाये जा सकते हैं और समय–समय पर कुछ नये गीतों से भी विद्यार्थियों का परिचय कराया जा सकता है। इस प्रक्रिया को रचनात्मक बनाने के लिए उनको पहले से उस गीत के सुर–ताल से परिचय कराने के बजाय उनको स्वयं उस गीत आदि को लयबद्ध करने को कहा जा सकता है। इस प्रक्रिया में धुन को अच्छे–बुरे पैमाने में मापने के बजाय उनको स्वयं रचने और उसको प्रदर्शित करने के अवसर देना ज़्यादा ज़रूरी है।

साथ ही समय–समय पर विभिन्न बालगीतों को खोजने और उसको कक्षा में साझा करने आदि को कहा जा सकता है।

**अभ्यास के प्रश्न :**

- ''संगीत हमारी सांस्कृतिक विरासत का वाहक है।'' इस पंक्ति का आशय स्पष्ट कीजिए।
- कला शिक्षा में कला के सैद्धान्तिक पक्ष के बजाय व्यवहारिक पक्ष की ओर ज़्यादा ध्यान क्यों देना चाहिए? स्पष्ट कीजिए।

**ध्वनि–** जो कुछ हम सुनते हैं वह ध्वनि है। गायन की आवाज, बालक के रोने की आवाज, दो ईंटों की टक्कर से उत्पन्न आवाज यह सब ध्वनि है। मधुर ध्वनियाँ जिसे हम सुनना चाहते हैं उसका संबंध संगीत के नाद ध्वनि से है। ध्वनि की उत्पत्ति कम्पन्न से होती है। जब किसी वाद्य को बजाते हैं तो उसमें कम्पन्न होता है और ध्वनि उत्पन्न होती है। ढोलक, तबला और पखावज में चमड़े के कम्पन्न और बाँसुरी व शहनाई में हवा में कम्पन्न से ध्वनि उत्पन्न होती है। संगीत में कम्पन्न को आन्दोलन कहते हैं। संगीत हमारे मन मस्तिष्क को चेतना, स्फूर्ति व शांति प्रदान करता है। इसके माध्यम से सीखा गया ज्ञान स्थायी होता है या इससे सीखी हुई चीज़ों को याद रखना आसान हो जाता है।

**अभ्यास के प्रश्न–**

- ध्वनि अपना रूप किस प्रकार प्राप्त करती है? स्पष्ट करो।
- संगीत में आन्दोलन से क्या आशय है?

**गतिविधि–**

- वातावरण में व्याप्त विभिन्न ध्वनियों को सुनें तथा प्राप्त अनुभूति का अनुसरण करें।
- सुनी हुई ध्वनियों में से आनंदित करने वाली ध्वनियों को अलग करो।
- माचिस की दो डिब्बियों को धागे की सहायता से जोड़कर टेलीफोन बनाएं तथा उससे ध्वनि सुनें।

**सुर–** स्वरों के बिना संगीत की कल्पना ही मिथ्या है। स्वरों का ही सम्मोहन है कि रोता हुआ बच्चा माँ की लोरी सुनकर नींद के आगोश में चला जाता है। कोयल के मधुर कूक से भला किसे सुखद अनुभूति नहीं होती हैं। आइए जाने स्वर किसे कहते हैं–

> ''लगातार कम्पन्न व नियमित आवृत्ति द्वारा उत्पन्न कर्णप्रिय मधुर ध्वनि स्वर कहलाती है, जो मन को प्रसन्न करती है''

**सा, रे, ग, म, प, ध, नि**

उपर्युक्त सात स्वरों के लिए संगीत शास्त्रों में पूर्ण नाम इस प्रकार दिए गए हैं–

(1) सा– षड़ज (2) रे– ऋषभ (3) ग– गंधार (4) म– मध्यम
(5) प– पंचम (6) ध– धैवत (7) नि– निषाद

**गतिविधि–**

(1) एक लोरी गाइए–

**लोरी**

चंदा मामा दूर के
पूअे पकाए गुर के
आप खाये थाली में
मुन्ने को दो प्याली में
प्याली गई टूट, मुन्ना गया रूठ।

लल्ला–लल्ला लोरी
दूध की कटोरी
दूध में बताशा
मुन्नी करे तमाशा

स्वर के दो भेद होते हैं– (1) शुद्ध स्वर (2) विकृत स्वर

- **शुद्ध स्वर–** जो स्वर अपने निश्चित स्थान पर स्थित रहते हैं अर्थात् न अपने स्थान से उतरते हैं और न ही चढ़ते हैं उन्हें शुद्ध स्वर कहते हैं। शुद्ध स्वरों को लिखते समय उन पर किसी भी चिह्न अथवा निशान का प्रयोग नहीं किया जाता है, जैसे– सा रे ग म प ध नि
- **विकृत स्वर–** जो स्वर अपने निश्चित स्थान से उतरते अथवा चढ़ते हैं उन्हें विकृत स्वर कहते हैं। सात स्वरों में से ''सा'' (षड़ज) एवं ''प'' (पंचम) को छोड़कर शेष स्वरों (रे ग म ध नि) के दो–दो रूप होते हैं। एक शुद्ध तथा दूसरा विकृत रूप। विकृत स्वर के दो प्रकार होते हैं– (1) कोमल (2) तीव्र
    - **कोमल–** जो शुद्ध स्वर अपने निश्चित स्थान से नीचे की ओर उतरता है, ऐसी स्थिति में वह ''कोमल स्वर'' कहलाता है। कोमल स्वरों को लिखने के लिए स्वरों के नीचे आड़ी रेखा का प्रयोग किया जाता है। जैसे– <u>रे</u> <u>ग</u> <u>ध</u> <u>नि</u>
    - **तीव्र–** जो शुद्ध स्वर अपने निश्चित स्थान से ऊपर उठता है उसे ''तीव्र स्वर'' कहते हैं। इसके लिए स्वर के ऊपर खड़ी रेखा खींचकर उसे चिन्हित किया जाता है, जैसे– म इस प्रकार सात शुद्ध एवं पाँच विकृत स्वर मिलकर कुल स्वरों की संख्या बारह होती है। जो इस प्रकार है–

सारे रे गम गम मप ध धनि नि

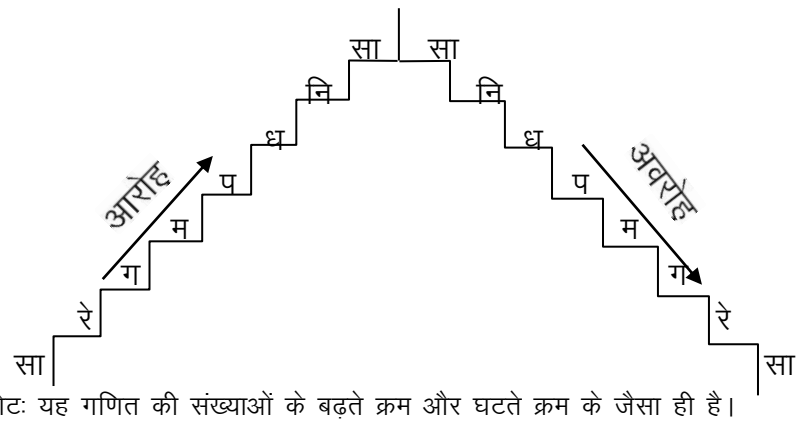


नोटः यह गणित की संख्याओं के बढ़ते क्रम और घटते क्रम के जैसा ही है।

**गतिविधि–**

तीव्र मध्यम के प्रयोग हेतु– 'तू ही राम है, तू रहीम है' प्रार्थना का समूह में गायन कराएं।
सभी कोमल स्वरों के गायन हेतु– 'हर देश में तू हर वेश में तू'' सर्वधर्म प्रार्थना कराएं।
यदि विद्यालय में हारमोनियम है तो उसकी सहायता से सातों शुद्ध स्वरों को गाने का अभ्यास करवाएं।

**अभ्यास के प्रश्न–**

- मधुर ध्वनि को क्या कहते हैं? यह किस प्रकार कोलाहल से पृथक है। व्याख्या करें।
- स्वर के महत्व को बताते हुए टिप्पणी लिखिए।
- कोमल, तीव्र किसके प्रकार है? इनके भेद को समझाते हुए स्वरों को चिन्हित भी करिए।
- निम्न में से कौन सा स्वर का शास्त्रीय नाम नहीं है– (✕ / ✓)

  ✶ धैवत ✶ ढोलक ✶ षड़ज ✶ कोमल ✶ निषाद ✶ चातक ✶ बांसुरी

सप्तक– 'सप्तक' का अर्थ है सात। सात स्वरों के समूह को सप्तक कहते हैं। सप्तक के तीन भेद मानते जाते हैं– (1) मंद्र सप्तक (2) मध्य सप्तक (3) तार सप्तक

(1) **मंद्र सप्तक–** जिस सप्तक के स्वरों की 'आवाज' सबसे नीची हो अथवा मध्य सप्तक से आधी हो उसे मंद्र सप्तक कहते हैं। इस सप्तक के स्वरों के उच्चारण के समय हृदय पर जोर पड़ता है। पं. भातखण्डे जी ने इसके स्वरों की पहचान स्वरों के नीचे बिन्दु के चिह्न का प्रयोग कर दर्शायी है।
जैसे– सा़ रे़ ग़ म़ प़ ध़ नि़

(2) **मध्य सप्तक–** 'मध्य' का अर्थ है बीच, अर्थात् न अधिक नीचा न अधिक ऊँचा । मंद्रसप्तक से दुगुनी आवाज होने पर मध्यसप्तक कहलाता है। इस सप्तक में स्वरों के उच्चारण के समय कंठ पर जोर पड़ता है। इसके स्वरों पर कोई चिह्न नहीं होता।
जैसे– सा रे ग म प ध नि

(3) **तार सप्तक–** मध्य सप्तक से दुगुनी ऊँची आवाज होने पर तार सप्तक कहलाता है। इसे उच्चारित करते समय तालू पर जोर पड़ता है। इसकी पहचान स्वरों पर बिन्दु द्वारा दर्शायी जाती है।
जैसे– सां रें गं मं पं धं निं

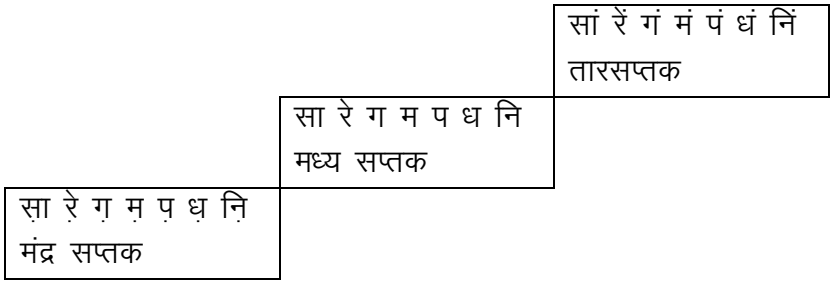

**गतिविधि–**

1. 'राष्ट्रगान' को स्वर व ताल में गाने का अभ्यास करावें।
2. इसके उतार–चढ़ाव को समझकर तीनों सप्तकों के स्वर का अनुभव करें।
3. राष्ट्रगीत का समूह में गायन करें।

**अभ्यास के प्रश्न–**

- सप्तक हम किसको कहेंगे–
  (1) रे ग म (2) सा रे ग म (3) सा रे ग म प ध नि
- सामान्य आवाज में गाना किस सप्तक की पहचान है?
- उच्च स्वरों में गाने के लिए स्वरों को लिखने का तरीका बताइए।

**अलंकार–** नियमानुसार स्वरों की चलन को अलंकार कहते हैं। अलंकार में कई कड़ियाँ होती हैं जो आपस में एक दूसरे से जुड़ी होती है। प्रत्येक अलंकार में मध्य 'सा' से तार 'सा' तक आरोही वर्ण और तार 'सा' से मध्य 'सा' तक अवरोही वर्ण हुआ करता है। अलंकार का अवरोह आरोह का ठीक उल्टा होता है। उदाहरण–

(1) आरोह–सारेग, रेगम, गमप, मपध, पधनी और धनिसां।
अवरोह– सांनिध, निधप, धपम, पमग, मसरे और गरेसा।।

(2) आरोह– सारेगरे, रेगमग, गमपम, अपधप, पधनिध, धनिसांनि।
अवरोह– सांनिधनि, निधपध, धपमप, पमगम, मगरेप, गरेसारे।।

इस प्रकार अनेक अलंकारों की रचना हो सकती है। अलंकार को **पलटा** भी कहते हैं। वाद्य के विद्यार्थियों को नित्य–प्रति अलंकार का अभ्यास करना चाहिए।

**गतिविधि–** अलंकारों को हारमोनियम की सहायता से गाने का अभ्यास करें। कुछ इस तरह के उतार–चढ़ाव को गाने की कोशिश करें।

**अभ्यास प्रश्न–**

- अलंकार से आप क्या समझते हैं?
- संगीत में इसकी आवश्यकता पर अपने विचार रखिए।

**लय–** कला का मूल स्वरूप लय है। संगीत में समान गति या चाल को लय कहते हैं। मनुष्य के दैनिक जीवन के क्रियाकलापों में, प्रकृति की घटनाओं में, पृथ्वी का घुमना, मौसम का परिवर्तन सूर्य चाँद का उदय–अस्त आदि।

हृदय की धड़कन, घड़ी की सूई भी निश्चित लय में गति करती है। इनमें से किसी भी गति अथवा लय यदि अनियमित हो जाए तो वह कार्य असहज प्रतीत होगा। संगीत की सुन्दरता के लिए लय व ताल अति आवश्यक है। 'लय' – ताल में एक मात्रा से दूसरी मात्रा के बीच के अन्तराल को 'लय' कहते हैं। लय मुख्यतः तीन प्रकार की होती है– (1) बिलम्बित (2) मध्य (3) द्रुत

(1) बिलम्बित– जिस लय की चाल बहुत धीमी हो उसे बिलम्बित लय कहते हैं। 'धीमी गति' मध्यलय से आधी लय को बिलम्बित लय कहा जाता है।

(2) मध्य लय का अर्थ है 'बीच की गति' अर्थात् जिस लय की चाल बिलम्बित लय से तेज तथा द्रुत लय से कम हो उसे 'मध्य' लय कहते हैं।

(3) द्रुत लय– द्रुत लय का अर्थ है 'तेज गति' अर्थात् जिस लय की चाल मध्य लय से दुगुनी तथा बिलम्बित लय की चौगुनी हो द्रुत लय कहलाती है।

**गतिविधि–**
(1) घड़ी के लोलक (पेन्डुलम) की गति को ध्यानपूर्वक देखें एवं उसकी गति की समीक्षा करें।
(2) प्रकृति में व्याप्त लयात्मकता का अवलोकन कर उसकी समीक्षा करें।
(3) हमारे शरीर के उन अंगों की पहचानें जिनमें नियमित गति होती है, उसकी अनुभूतियों को लिखें।

**अभ्यास के प्रश्न–**

- संगीत में लय के महत्त्व को समझाएं।
- घड़ी की सुईयों की सहायता से आप लय के प्रकारों को स्पष्ट करें।

**ताल–** विभिन्न मात्राओं के विविध समूहों को ताल कहते हैं। संगीत में केवल मात्रा से काम पूरा नहीं होता है, क्योंकि मात्रा में केवल समय की गति का बोध होता है। अतः मात्राओं को नापने के लिए ताल बनाए गए। स्वर और लय, संगीत रूपी भवन के दो स्तम्भ हैं। लय से मात्रा और मात्रा से ताल बनें। ताल अनेक माने जाते हैं, जैसे– झपताल, एकताल, चारताल, रूपक, तीनताल आदि। गीत के प्रकारों के आधार पर विभिन्न तालों की रचना की गई है। जैसे– ख्याल के लिए तीनताल, एकताल, झपताल, तिलवाड़ा आदि। ठुमरी के लिए दीपचन्दी तथा झपताल, ध्रुपद के लिए चारताल, शूलताल ब्रह्मताल आदि व धमार (होरी) के लिए धमार ताल बनाया गया है। ताल देने के लिए मुख्यतः तबला और कभी–कभी पखावज प्रयोग किया जाता है। नाट्य शास्त्र के रचयिता भरतमुनि ने संगीत में (काल) समय के मापने के साधन को ताल कहा है।

**मात्रा–** ताल मापने की इकाई को मात्रा कहते हैं। मात्रा ताल का ही एक हिस्सा है क्योंकि मात्राओं के योग से ही समस्त तालों की रचना होती है।

जैसे– 6 मात्रा की – दादरा ताल
8 मात्रा की – कहरवा ताल
16 मात्रा की – त्रिताल आदि।

**विभाग–** ताल को कई खण्डों में विभाजित किया जाता है। इसे विभाग कहा जाता है। विभाग बतलाने के लिए ताल के दो बोलों के मध्य निश्चित स्थान पर खड़ी रेखा खींची जाती है प्रत्येक ताल के विभागों की संख्या भिन्न–भिन्न होती है।

**सम–** ताल की प्रथम मात्रा 'सम' कहलाती है। ताल के प्रथम भाग के प्रथम बोल पर ताली लगाई जाती है। ताल में सम को X चिह्न द्वारा चिह्नित किया जाता है।

**ताली–** अन्य विभागों में जहाँ ताली लगाई जाती है वहाँ ताली को दो या दो से आगे की सँख्याओं में दर्शाया जाता है।

**खाली–** जिस विभाग के प्रथम बोल के नीचे '0' लिखा हो वहाँ ताली नहीं लगानी होती है इसे खाली कहा जाता है।

**बोल–** प्रत्येक ताल के कुछ निश्चित बोल होते हैं। ताल में बोलों की संख्या उसकी मात्राओं की संख्या के बराबर होती है। वादक इन बोलों को ताल वाद्य जैसे– तबला, पखावज ढोलक आदि पर बजाते हैं। – धा, धिं, ता, तिरकिट, धागे आदि।

**चिह्न–** ताल में सम, खाली, भरी, 2, 3, 4 आदि को दर्शाने के लिए निर्धारित चिह्नों का प्रयोग किया जाता है। ये चिह्न उसी मात्रा व बोल के नीचे लगाया जाता है, जहाँ से विभाग प्रारम्भ होता है।

**आवृत्ति–** आवृत्ति का अर्थ है– फेरना, दोहरना या चक्कर लगाना। ताल में सम से सम तक जितनी बार दोहराया जाएगा उतनी आवृत्ति होगी।

ताल दादरा

मात्रा– 6 / विभाग–2 / ताली–1 / खाली–1

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| मात्रा | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 |
| बोल | धा | धिं | ना | धा | तिं | ना |
| चिह्न | × | | | 0 | | |

ताल कहरवा

मात्रा–8 / विभाग–2 / ताली–1 / खाली–1

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| मात्रा | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 |
| बोल | धा | गे | न | ति | न | क | धि | न |
| चिह्न | × | | | | 0 | | | |

ताल– त्रिताल (तीन ताल)

मात्रा–16 / विभाग–4 / ताली–3 / खाली–1

| | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| मात्रा | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 | 9 | 10 | 11 | 12 | 13 | 14 | 15 | 16 |
| बोल | धा | धिं | धिं | धा | धा | धिं | धिं | धा | धा | तिं | तिं | ता | ता | धिं | धिं | धा |
| चिह्न | × | | | | 2 | | | | 0 | | | | 3 | | | |

**गतिविधि–**

1. विद्यालय के पी.टी. परेड में गति के अनुसार अंकों का उच्चारण (1, 2, 3, 4) करते हुए पद–संचालन करें तथा कुछ देर निरंतर पुनरावृत्ति करें।
2. ''सारे जहाँ से अच्छा'' गीत गाते हुए ताल का अनुभव करें।

**वाद्य :** प्रकृति से प्रेरणा पाकर मनुष्य ने वाद्यों का विकास व सृजन किया। संगीत वाद्यों का क्रमिक विकास विश्व की मानव जाति का एक सामूहिक प्रयास है। मनुष्य का प्राचीन या आदिमतम संगीत वाद्य 'ताली' था अर्थात् मनुष्य अपने शरीर के विभिन्न भागों पर हाथों द्वारा आघात करके लय रूपों का आनन्द प्राप्त करता था। जंगलों में भटकते मानव ने बांस वनों में हवा के प्रवाह पर एक मधुर ध्वनि से प्रभावित हो, फूंक–वाद्यों की रचना की। शिकार हेतु धनुष की रचना करने वाले मानव ने धनुष की टंकार से प्रेरणा लेकर तार–वाद्यों की रचना की। हवा के झोकों से वृक्ष की सूखी फलियों के हिलने से उत्पन्न आवाजों से मानव आकर्षित हुआ,

जिससे झुनझुना, घुंघरू आदि वाद्यों की कल्पना को आकार दिया। वाद्यों की संरचना एवं वादन क्रिया के आधार पर वाद्यों को चार भागों में बांटा गया है। वाद्यों के प्रकार–

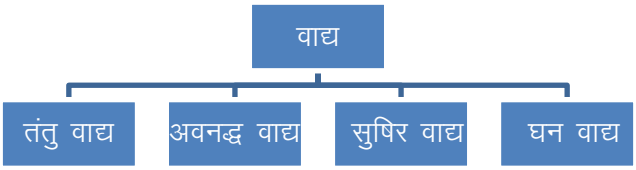


**तंतु वाद्य–** इस श्रेणी में वे वाद्य यंत्र आते हैं जिनमें तार द्वारा स्वर उत्पन्न किए जाते हैं, जैसे– वीणा, सितार, एकतारा, वायलिन, सारंगी आदि।

**अवनद्ध वाद्य–** चमड़े में मढ़े हुए वे वाद्य यंत्र जिन पर आघात कर बजाया जाता है। जैसे– ढोलक, डमरू, नगाड़ा, डफली आदि।

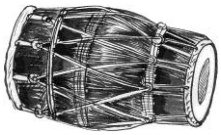

**सुषिर वाद्य–** हवा या फूँक से बजने वाले वाद्ययंत्रों को सुषिर वाद्य कहते हैं। जैसे– शंख, बाँसुरी, हारमोनियम, बीन, शहनाई आदि।

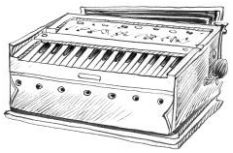

**घन वाद्य–** मिट्टी धातु, लकड़ी आदि से बने वे वाद्य यंत्र जिन्हें चोट या आघात द्वारा बजाया जाता है। जैसे– घुँघरू, घंटा, घंटी, मंजीरा, खड़ताल आदि।

**गतिविधि–**

1. ताली बजाएँ या टेबल, कुर्सी या धातु के बने पात्रों को बजाएँ।
2. पेन के ढक्कन में फूँक द्वारा ध्वनि उत्पन्न करने का अभ्यास करें।
3. दो कटोरियों को आपस में टकराकर ध्वनि सुनें।
4. गुब्बारे में कुछ सरसों के दाने डालकर गुब्बारा फुलाकर एक लकड़ी से बाँधकर हिलाएँ। झुनझुने जैसी आवाज अनुभव करें।
5. केले या ताड़ के पत्तों का पिपही बनाकर फूँक द्वारा बजाने का प्रयास करें।

**अभ्यास के प्रश्न–**

- संगीत में वाद्ययंत्रों की आवश्यकता क्यों हुई? स्पष्ट कीजिए।
- वाद्य किसे कहते हैं? उदाहरण देते हुए इसके प्रकारों को समझाइए।
- आपके स्थानीय क्षेत्र के लोकवाद्यों की सूची तैयार कीजिए एवं इसकी विस्तृत जानकारी एकत्रित करके एक लेख लिखिए।
- हवा से बजने वाले वाद्यों को किस नाम से जाना जाता है। उसके पाँच उदाहरण लिखिए।

आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक वाद्यों में कई प्रकार के परिवर्तनों को देखा जा सकता है, साथ ही कई नवीन वाद्यों के आविष्कार एवं प्रयोगों को भी आवश्यक माना गया। प्राचीन वाद्य दुर्दर के आधुनिक रूप तबला है, वैसे माना जाता है कि पखावज के दो टुकड़े कर तबले का आविष्कार किया गया। आधुनिक युग के आविष्कार के रूप में कई वाद्यों जिनमें– मोहन वीणा जो गिटार से निर्मित जिन्हें पं. विश्वमोहन भट्ट ने निर्मित किया है। संतूर, जलतरंग आदि नवीन वाद्य हैं। आजकल इलेक्ट्रॉनिक गिटार, तबला, तानपुरा, सितार, हारमोनियम, सिथेंसाइजर, पैड, ड्रम, कॉगो आदि भी प्रचलन में है। आइए कुछ महत्त्वपूर्ण वाद्य जिन्हें शास्त्रीय एवं लोक गीतों के लिए प्राचीन काल से प्रयोग में लाए जाते हैं, इनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण वाद्यों के निर्माण एवं संक्षिप्त इतिहास को देखें–

**तबला–** अधिकांश विद्यानों के मतानुसार तेरहवीं सदी में अलाउद्दीन खिलजी के समय अमीर खुसरो ने तबले का आविष्कार किया। आधुनिक समय में इसका सर्वाधिक प्रयोग होता है। इसके पूर्व पखावज का प्रयोग होता था। सर्वप्रथम सिधार खाँ तबलिये के रूप में जाने जाते हैं, इन्होंने दिल्ली घराने की नींव डाली। तबले के मुख्य तीन घराने हैं–(1)पश्चिमी (2)पूर्वी (3)पंजाब

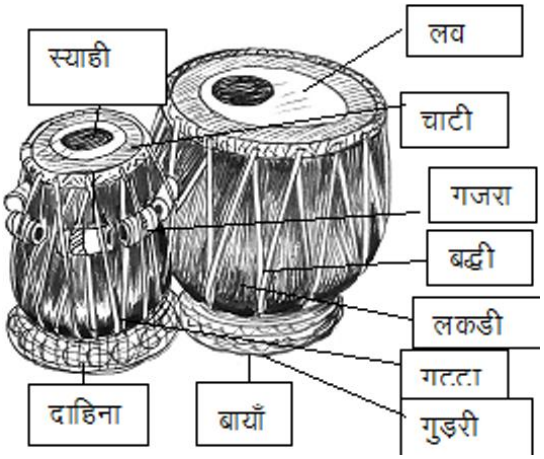


- पश्चिमी– दिल्ली और अजराड़ा घराना इसके अन्तर्गत आते हैं।
- पूर्वी– लखनऊ, फर्रुखाबाद और बनारस घराने आते हैं।
- पंजाब– एक स्वतंत्र घराना है।

तबले के दो भाग होते हैं, जिन्हें दाहिना और बायाँ कहा जाता है। दाहिना को तबला एवं बायां को डग्गा कहा जाता है। सर्वप्रथम दाहिना के अंगों पर विचार करेंगे।

**तबले के दाहिना अंग पर विचार करें ।**

1. लकड़ी– यह अधिकतर कटहल, आम, खैर, सागौन अथवा विजयसाल की बनी होती है। अन्दर से खोखली गोल आकृति की होती है। उस पर गोलाई 6 इंच नीचे 9 इंच होती है तथा एक फीट ऊँची होती है।
2. पूड़ी– लकड़ी के मुँह पर मढ़े हुए पूरे चमड़े को पूड़ी कहते हैं। अतः चांटी, लव, स्याही और खाल का संयुक्त नाम पूड़ी है। यह बकरे की खाल की होती है और लकड़ी के ऊपर बद्धी से कसी रहती है।
3. गजरा– पूड़ी के चारों ओर चमड़े की मोटी माला गजरा कहलाता है। इसमें 16 छिद्र होते हैं जिनमें से बद्धी गुजरती है।
4. चांटी– पूड़ी के किनारे–किनारे अन्दर की तरफ लगी हुई चमड़े की पट्टी को चांटी कहते हैं।
5. स्याही– पूड़ी के बीचों–बीच चांटी से लगभग एक इंच की दूरी पर चन्द्रकार काले मसाले को स्याही कहते हैं। पतली स्याही से तबला ऊंचे स्वर से मोटी स्याही से नीचे स्वर से मिलता है।
6. लव– चांटी और स्याही के बीच खाली स्थान को लव अथवा मैदान कहते हैं।

7. बद्धी– गजरे के बीच से जाने वाली चमड़े की लम्बी पट्टी को बद्धी कहते हैं। बद्धी से पूड़ी कसी रहती है और गट्टों पर से होती हुई ऊपर–नीचे के गजरों में फँसी रहती है।

8. गट्टा– दाहिने तबले पर लगभग तीन इंच लम्बी लकड़ी के आठ गोल टुकड़े होते हैं, जिन्हें गट्टा कहते हैं। गट्टे बद्धी से दबे रहते हैं। गट्टा नीचे खिसकाने से तबले का स्वर ऊपर और ऊपर खिसकाने से नीचे जाता है।

9. गुडरी– तबले की पेंदी में चमड़े की गोलकमाला, जिसके ऊपर–नीचे से बद्धीक गुजरती है, गुड़री कहलाती है। गुड़री से एक ओर बद्धी द्वारा पूड़ी कसी रहती है और दूसरी ओर इसके सहारे तबला ज़मीन पर टिकता है।

**डग्गा अथवा बायाँ के अंग पर विचार करें**

1. कूड़ी– यह मिट्टी, तांबे अथवा लकड़ी की होती है।
2. पूड़ी– दाहिने के समान डग्गे की पूड़ी में चाटी, लव और स्याही का समावेश होता है।
3. गोट– पूड़ी में चारों ओर अन्दर की तरफ लगी हुई पट्टी को गोट कहते हैं।
4. डोरी– पूड़ी को कसने के लिए कुछ डग्गों में डोरी अधिकांश में चमड़े की लम्बी पट्टी की जाती है।
5. लव – चांटी और स्याही के बीच खाली स्थान को लव अथवा मैदान कहते हैं।
6. गजरा– दाहिने के समान डग्गे में भी चमड़े के बने हुये हार में पूड़ी गुंथी रहती है जिसे गजरा कहते हैं । गजरे को नीचे से आघात करने से ढीला होता है।
7. डोरी– पूड़ी को कसने के लिए कुछ डग्गों में डोरी और अधिकांश में चमड़े की लम्बी पट्टी प्रयोग की जाती है । कुछ डग्गों में डोरी कसने के लिए छल्ले भी लगे रहते हैं।
8. गुड़री – दाहिना के समान बायें की पेंदी में चमड़े की माला होती है, जिसे गुड़री कहते हैं।

**तम्बूरा अथवा तानपुरा** –तानपुरा उत्तर भारतीय संगीत में इसने महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लिया है। इसका स्वर बहुत ही मधुर होता है जो संगीत – कार्यक्रमों के लिए अनुकूल वातावरण की सृष्टि में सहायक होता है । इस वाद्य का उपयोग गायन अथवा वादन के साथ स्वर देने में सहायक होता है । तानपुरा में चार तान होते हैं । प्रथम तार को मंद्र, पंचम अथवा जिन रागों में पंचम स्वर नहीं होता है, मन्द्र के मध्यम से मिलाते हैं। कुछ रागों में, न तो पंचम और न शुद्ध मध्यम ही प्रयोग होते हैं, पूरिया या मारवा, तब इसे मन्द्र नि से मिलाते हैं । प्रथम तार पीतल का होता है । तानपूरे के दूसरे व तीसरे तार सदैव मध्य सप्तक के षडज से मिलाते जाते हैं । ये दोनों तार लोहे के होते हैं । चौथा व अंतिम तार पीतल का होता है। इसे मन्द्र षडज से मिलाया जाता है। अन्य तारों की तुलना में यह मोटा होता है।

**तानपुरा के अंग**

1. तुम्बा –यह लौकी का बना हुआ गोल आकृति का होता है, जो डांड के नीचे भाग से जुड़ा हुआ होता है।
2. तबली –गोल लौकी के ऊपर का भाग काटकर अलग कर दिया जाता है और खोखले भाग को लकड़ी के एक टुकड़े से ढँक दिया जाता है, जिसे तबली कहते हैं।

3. ब्रिज–इसे घुड़च अथवा घोड़ी कहते हैं । यह तबली के ऊपर स्थित लकड़ी अथवा हड्डी की बनी हुई छोटी चौकी की आकार की होती है

4. धागा –घुड़च और तार के बीच सूत अथवा धागे को ठीक स्थान पर स्थित कर देने से तम्बूरे के झनकार में वृद्धि होती है।

5. कील, मोंगरा अथवा लँगोट – तुम्बे के नीचे के भाग में तार को बाँधने के लिए एक कील होती है जिसे लँगोट अथवा मोंगरा भी कहते हैं।

6.पत्तियाँ– सजावट के लिए तुम्बे के ऊपर लकड़ी की सुन्दर पत्तियाँ बनाई जाती हैं, जिन्हें शृंगार भी कहते हैं।

7.गुल– जिस स्थान पर तुम्बा और डाँड के नीचे का भाग मिलता है गुल कहलाता है।

8.डांड– यह तानपुरे के ऊपर का भाग है जो लम्बी और पोली लकड़ी का बना होता है। इसके नीचे का भाग तुम्बे से जोड़ दिया जाता है और ऊपर के भाग में चार खूंटियाँ होती हैं। डांड के ऊपर चारों ओर तार तने रहते हैं।

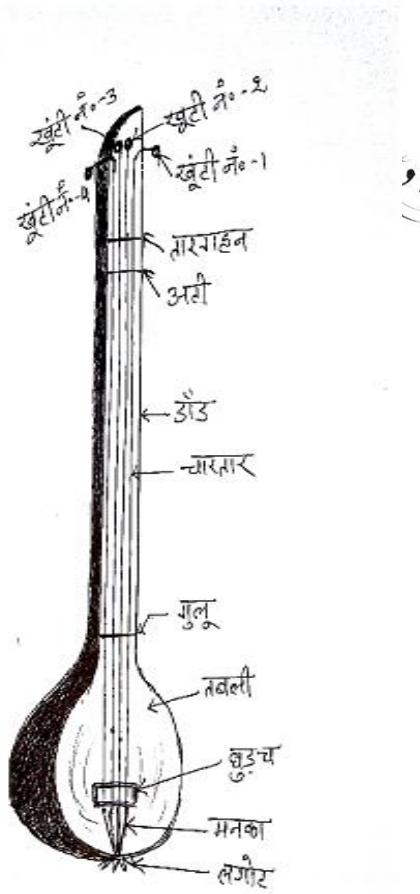


9. अटी या अटक– तानपुरे के चारों चार कील से घुड़च पर होते हुए ऊपर को जाते हैं। ऊपर की ओर सर्वप्रथम हाथी–दाँत की एक पट्टी मिलती है, जिसके ऊपर चारों तार अलग–अलग रखे जाते हैं इसे अटी या अटक कहते हैं।

10. तारगहन अथवा तारदान– अटी से होता हुआ तार पुनः ऊपर को जाता है जहाँ एक दूसरी पट्टी मिलती है। इस पट्टी में अलग–अलग चार छिद्र होते हैं।

11. खूटियाँ– इससे चारों तार क्रमशः बाँध दिए जाते हैं। ये खूटियाँ तानपुरे के ऊपरी भाग में होती हैं। दो खूटियाँ तारपुरे के सामने के भाग में, एक डांड की बायीं ओर और दूसरी दाहिनी ओर होती है।

12. तार–पुरुषों के तानपुरे में प्रथम और अंतिम तार पीतल का और अन्य दो बीच के तार लोहे के होते हैं। स्त्रियों के तानपुरे में केवल अंतिम तार पीतल का होता है और शेष लोहे के होते हैं

13. मनका– स्वरों के सूक्ष्म अन्तर को ठीक करने के लिए मोती अथवा हाथी–दाँत के छोटे–छोटे टुकड़े तानपुरे के चारों तार में घुड़च और कील के मध्य अलग–अलग पिरोये जाते हैं जिन्हें मनका कहते हैं। इनसे तार के स्वर थोड़ा ऊपर–नीचे किए जाते हैं।

**अभ्यास प्रश्न–**

- तबले की तरह निर्मित वाद्यों की सूची बनाएं एवं इनके अंगों के नाम तथा निर्माण में लगी वस्तुओं के नाम बताएँ।
- तबले के विभिन्न अंग और उनका प्रयोग विधि बताइए।
- दाहिना तबला को किन–किन स्वरों से मिलाते हैं और क्यों?

**लोक संगीतः** लोक संगीत हमारे लोक–जीवन, लोक संस्कृति, लोक व्यवहार पर्व–त्योहार का यथार्थ चित्रण करता है। लोक गीतों में लोक जीवन की सच्ची झांकी मिलती है। इसके अन्तर्गत ग्राम्य जीवन, आशा, आकांक्षा, सुख–दुःख, दैनिक कार्यकलाप, पर्व–त्योहार, धार्मिक अनुष्ठान, विवाह, फसलों की बुआई–कटाई, सूर्योदय, सूर्यास्त, वर्षा बसंत आदि ऋतुओं का मनोहारी चित्रण लोकगीतों में निहित है। देश के अन्य राज्यों की तरह अपने बिहार राज्य में भी विभिन्न त्योहारों तथा भिन्न–भिन्न अवसरों के लिए अलग–अलग गीत प्रचलित हैं– विवाह के अवसर पर कन्या परीछन, सिंदुरदान, मड़वा गीत, कन्यादान के गीत, चुमावन गीत, विदाई गीत आदि प्रत्येक माह एवं ऋतुओं के लिए अलग–अलग गीत जैसे सावन के गीत, झूला गीत, चैत, फाग, कजरी, चौहट, बारहमासा आदि। जाता गीत, धनकटनी के गीत, वसंत गीत आदि। संतान के जन्म लेने पर 'सोहर', 'बधइया' 'पावरियाँ गीत' प्रचलित है। 'गोदना' 'मुण्डन' 'यज्ञोपवीत्' (जनेऊ गीत) के अलावा कई तीज त्योहारों पर गीतों का प्रचलन है, जैसे– लोक आस्था का महापर्व छठ, 'गोधन' देवी गीत आदि का प्रचलन है। पेरी ने कहा है– ''लोक गीत मानव का उल्लासमय संगीत है। अपने देश में लोक गीतों का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। यहाँ के परम्परागत लोक गीतों में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों की झाकियाँ देखने को मिलती है।

आधुनिक काल में लोक–संगीत तथा शास्त्रीय संगीत के समन्वय का सफल प्रयास श्री कुमार गंधर्व ने किया है। मालवती और सहेली तोड़ी जैसे अनेक रागों की रचना इन्होंने लोक–संगीत के आधार पर की है। आइए, अपने राज्य के विभिन्न लोक गीतों से सर्वाधिक चर्चित और लोकप्रिय गीतों में चैती के एक गीत को स्वर शब्द और ताल के साथ एक समझ विकसित करें और इसे संबंध ताल के साथ गाने का प्रयास करें। यदि हारमोनियम की उपलब्धता हो तो उसके साथ तबले पर संगत करने का प्रयास विशेषज्ञ संगीतज्ञ के सानिध्य में करने का प्रयास करेंगे।

**चैती**

चैत मासे हरि से मिला द हो रामा
चैत रे मासे .....
नेहिया लगा द हरि से मिला द
हुनका चरण में लगा द हो रामा, चैत रे मासे।
आइस बसन्त कोइलिया बाले
सब सखियन के पिया घर डोले
हमरा के बिरहा सुना द हो रामा
चैत रे मासे।
आम मोजराइल, सरिसो फुलाइल
तड़पत जियरा, हरि नहिं आइत
हुनका के केहू बोला द हो रामा
चैत रे मासे।

**गतिविधि–**

- बच्चों से अलग–अलग अवसरों पर गाने जाने वाले लोक गीतों की सूची बनवाएं।
- विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों के आधार पर निबंध लिखने का निर्देश दें।

**अभ्यास के प्रश्न–**

- क्या लोक गीत भी राग और ताल पर आधारित होते हैं? इस पर एक लेख लिखिए।
- लोक गीतों का हमारे जीवन से क्या संबंध है? समझाइए।

### 2.4.2 नृत्य : लोक नृत्य, शास्त्रीय नृत्य, सृजनात्मक नृत्य

ऐसी मान्यता है कि नृत्य मनुष्य की (सृजन करने की इच्छा) का प्रथम सोपान है। आदिम काल से वर्तमान तक मानव नृत्य के परम आनंद के लिए अनेक विधियों–प्रविधियों का सृजन करता आया है। जीवन और मृत्यु से परे नृत्य एक ऐसी आदिम प्रबल अनुभूति कही जा सकती है, जिसने मानव के आंतरिक और बहिर्जगत को आनंद की लय दी तथा साथ ही उसे वाद्य और संगीत के सौंदर्य से समृद्ध किया।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में नृत्य के जनक नटराज शिव को माना जा सकता है जो उनके अत्यन्त प्रबल संवेग का प्रगटीकरण ''ताण्डव'' के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। पार्वती के शृंगारिक नृत्य को ''लास्य'' कहा गया है।

नृत्य की प्रेरणा मनुष्य को प्रकृति और जीवन से मिली है। प्राणियों का जीवन स्पंदन एवं चेतनता की आत्माभिव्यक्ति नृत्य है। लय, तालबद्ध शारीरिक गतियों को ''नृत्य'' कहते हैं जो नृत्य से पूर्व या पश्चात् की गई आंगिक चेष्टाएँ होती हैं, इस प्रकार चेष्टाएँ शास्त्र से कम लेकिन इच्छा से अधिक प्रेरित होती हैं। भारत के सभी शास्त्रीय नृत्यों का जड़ नाट्य शास्त्र ही है। सामान्यतः नृत्य के दो प्रकार है, ''मार्गी'' या व्यवस्थित (शास्त्रीय) तथा ''देशी'' या क्षेत्रीय समयांतराल में इन नृत्यों पर राजनीतिक सांस्कृतिक एवं क्षेत्रीय प्रभाव के कारण विभिन्न प्रभाव दिखाई देते हैं जिससे इनका नामकरण भी हुआ।

अब प्रश्न यह है कि प्रारंभिक कक्षाओं में कला शिक्षण में नृत्य की शिक्षा क्यों दी जाए? इस प्रश्न को समझने में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, के कला, संगीत, नृत्य और रंगमंच राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र मदद करता है। इनके अनुसार नृत्य शिक्षण को औपचारिक पाठ्यचर्या में सम्मिलित करने के विशेष लाभ हैं जो संभवतः केवल भारतीय नृत्य अभ्यास पद्धति के अभ्यास में ही मिलते हैं।

चूँकि शास्त्रीय नृत्य गति, संगीत, अभिव्यक्ति, साहित्य दर्शन पौराणिक कथाओं, लय छंद योग एवं साधना जैसे सौंदर्य के अनुभवों की परिणति का माध्यम है, यदि इसे अच्छी तरह से शिक्षा में शामिल किया जाए तो औपचारिक शिक्षा पद्धति की अनेक समस्याओं का स्वयं ही निदान हो जाएगा। इसके कुछ लाभ निम्न हैं–

- नृत्य के माध्यम से शिक्षार्थी अपने शरीर का ज्ञान प्राप्त करते हैं। किस प्रकार उन्हें खड़ा होना चाहिए, श्वास लेना चाहिए, अपनी रीढ़ की हड्डी को किस प्रकार रखना चाहिए और किस प्रकार चलना चाहिए आदि।
- नृत्य से व्यक्ति में संवेदना का विकास होता है। ऐसे समाज में जहाँ संवेदनाओं को दबा कर रखना पड़ता है तथा अभिव्यक्ति के सीमित माध्यम हो वहाँ नृत्य के माध्यम से मानव संवेदना की अभिव्यक्ति होती है और अंदर और बाहर सामंजस्य की स्थापना होती है।

- नृत्य से एकाग्रता, मानसिक एवं शारीरिक चेतना शीघ्रता से प्रतिक्रिया व्यक्त करने में सुधार और शारीरिक क्षमता का विकास होता है। नृत्य तनाव कम करने में भी सहायक सिद्ध होता है।
- नृत्य के प्रशिक्षण से स्मरणशक्ति तीव्र होती है। केवल नृत्य से ही इस बात का पता चलता है कि शरीर की अपनी स्मरण शक्ति है।
- अन्य कला रूपों के साथ इसका संबंध होने से मस्तिष्क में सोचों का विस्तार होता है। किसी भी कला का विकास एकांत में नहीं होता। प्रत्येक कला में अन्य कलाओं की झलक होती है। संगीत नृत्य का एक अभिन्न अंग है और कविता, चित्रकला एवं मूर्तिकला भी नृत्य से भलीभांति जुड़े हैं। अतः नृत्य एक शारीरिक गतिविधि न होकर सांस्कृतिक विरासत को जानने का सम्पूर्ण अनुभव है।

उपरोक्त लाभ के संदर्भ में उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों में शास्त्रीय एवं क्षेत्रीय नृत्य शैलियों में अंतर की समझ होना आवश्यक है। उन्हें देश की शास्त्रीय नृत्य परम्पराओं का ज्ञान, उनका भौगोलिक विस्तार, हर एक का वर्णन वेशभूषा एवं इतिहास से भी परिचित होना चाहिए। विद्यार्थियों को उच्च प्राथमिक स्तर में नृत्य के सरल पारिभाषिक शब्दों से भी परिचित होना चाहिए। जैसे– रस, हस्त–अभिनय आदि। उनके सौंदर्यबोध के विकास हेतु उन्हें नृत्य के प्रदर्शन अपने क्षेत्र के नृत्य संस्थानों में जाकर सीखने की प्रक्रिया समझनी चाहिए। विद्यार्थियों को समीप के स्मारकों, संग्रहालयों तथा मंदिरों आदि में जाना चाहिए और वहाँ प्रदर्शित नृत्य रूपों के बारे में जानने का प्रयास करना चाहिए।

उच्च प्राथमिक स्तर के दौरान, नृत्य के माध्यम से उन्हें पौराणिक कथाओं से परिचित कराया जाना चाहिए जो विशेषकर महाभारत, रामायण तथा पंचतंत्र पर आधारित हो। सामान्य नृत्य गतिविधि और संगीत के माध्यम से काल्पनिक विषयों को लिया जा सकता है।

गतिविधि–
1. विभिन्न अवसरों पर किए जाने वाले लोक नृत्यों की सूची बनवाएँ।
2. पत्रिकाओं, समाचारपत्रों आदि से नृत्य संबंधी चित्रों का संग्रह करवाएँ
3. नृत्य संबंधी किसी घटना का वृतांत एवं संस्मरण लिखवाएँ

**अभ्यास के प्रश्न–**

- नृत्य की प्रेरणा मनुष्य को प्रकृति व जीवन से किस प्रकार मिली? उदाहरणों द्वारा स्पष्ट कीजिए।

- औपचारिक शिक्षा में शास्त्रीय नृत्य की उपयोगिता बताइए।

**लोक नृत्य** – नृत्य के वे प्रकार जो क्षेत्रीयता से रचे बसे हों लोक नृत्य कहलाते हैं। वर्तमान समय में तीव्र गति से भागती–दौड़ती दुनिया ने अपने रंगों में रचे बसे इन लोक कक्षाओं को अपने पैरों तले रौंदने का काम किया है। हम अपनी पारम्परिक विरासत को भूलते जा रहे हैं। फलतः हमारी पहचान खतरे में पड़ गई है। लोक नृत्य एक ऐसी परम्परा रही है जो हमारे दैनिक एवं अक्षूण्ण सांस्कृतिक विरासम में उत्सवों के साथ स्वतः चलने वाली रही है। अब प्रश्न यह है कि आखिर क्यों हमें लोक नृत्यों की प्राचीन परम्परा को बनाए रखना चाहिए और कैसे? इस प्रश्न के उत्तर में हम कह सकते हैं कि हमारी परम्पराएँ जो विश्व अप संस्कृतियों के द्वारा

से चली जा रही हैं। उसे पुनः अपनी पुरानी पहचान देनी होगी तथा इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रारंभिक शिक्षा में इन लोक परम्पराओं को सम्मिलित कर बच्चों में इनके प्रति संवेदना का संचार करना होगा। इतना ही नहीं, अन्य विषयों के शिक्षण में कला को समावेशित कर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सुरूची सम्पन्न बनाने की आवश्यकता है।

बिहार के लोक नृत्यों की सूची काफी लम्बी है। इनमें निम्नांकित महत्त्वपूर्ण है–

1. **नारदी–** यह एक कीर्तनिया नाच है। इसमें परम्परागत साज मृदंग एवं झाल का प्रयोग किया जाता है। कीर्तनकार इस नृत्य के दौरान विभिन्न प्रकार के स्वांग किया करते हैं।
2. **गंगिया–** पतित पावनी गंगा मात्र एक नदी ही नहीं अपितु भारतीय संस्कृति की जननी है। गंगा बिहार की प्रमुख नदियों में से एक है। ऐसी मान्यता है कि इसके पवित्र जल से स्नान करने से मानव अपने समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। गंगा स्तुति महिलाओं के द्वारा नृत्य के माध्यम से की जाती है जिसे गंगिया नृत्य कहा जाता है।
3. **मांझी नृत्य–** नदियों में नाविकों द्वारा यह गीत नृत्य मुद्रा में पाया जाता है।
4. **घो–घो रानी–** छोटे–छोटे बच्चों का खेल, जिसे लोक शैली में घो–घो रानी कहा जाता है। इस नृत्य में एक लड़की बीच में रहती है तथा चारों तरफ से लड़कियाँ गोल घेरा बनाकर गीत गाती हैं और घूमती हैं।
5. **गोदनी–** इस लोक नृत्य में मछली बेचने वाली तथा ग्राहकों का स्वांग किया जाता है।
6. **लौढ़ियारी–** इसमें नायक जो एक किसान होता है, अपने बथान (गाय, भैंस बाँधने की जगह) पर भाव भंगिमाओं के साथ गाता और नाचता है।
7. **धन –कटनी–** फसल कट जाने के बाद किसान सपरिवार खुशियाँ मनाता हुआ गाता और नाचता है। जो धन कटनी नाच के रूप में जाना जाता है।
8. **बोलबै–** यह नृत्य पति के परदेश जाते समय के प्रसंग से जुड़ा है। इसे अंगप्रदेश (भागलपुर) तथा इसके आस–पास के इलाकों में प्रचलित।
9. **सामा–चकेवा–** यह नृत्य बिहार के मिथिलांचल का एक महत्त्वपूर्ण नृत्य है। इसमें महिलाएँ अपने भाईयों की रक्षा के लिए निवेदन करती हैं। इसे कार्तिक मास में किए जाने की परम्परा है।
10. **घंटो–** भारत देश की परम्परा है अतिथि देवो भव। परंतु जब घर में कुछ खाने का न हो तब अतिथि का आगमन दुःख का विषय होता है। इस नृत्य के माध्यम से ससुराल में रह रही गरीब बहन को जब भाई के आने की सूचना मिलती है तो वह काफी खुश हो जाती है, लेकिन खाने का अभाव उसे परेशान कर देता है। सत्कार की चिंता में विरह गीत गाया जाता है तथा बेचैनी भरा नृत्य भी किया जाता है।
11. **झिझिया–** यह मिथिला का बहुत ही लोकप्रिय लोक नृत्य है जिसे दुर्गापूजा के अवसर पर महिलाओं के द्वारा किया जाता है। इस नृत्य का संबंध तंत्र–मंत्र से भी बताया जाता है।
12. **इरनी–बिरनी–** यह लोक नृत्य अंगिका का एक प्रमुख नृत्य है। इस नृत्य की विषयवस्तु पति–पत्नी के बीच मनमुटाव है।
13. **डोमकच–** शादी–ब्याह के अवसर पर महिलाओं द्वारा समूह में स्वांग एवं नृत्य के रूप में किया जाने वाला यह एक लोकप्रिय नृत्य नाटिका है। जब बारात दुल्हन के घर शादी के लिए रवाना हो चुकी होती है और घर पर सिर्फ महिलाएँ ही रह जाती हैं तो महिलाओं द्वारा पुरुषों का वेश बनाकर नृत्य नाटिका किया जाता है।

14. **देवहर–** देवी–देवताओं का प्रतिनिधित्व करता हुआ अत्यन्त प्राचीन गीत एवं नृत्य है। बिहार और झारखंड में यह प्रचलित है। कहीं–कहीं इस नृत्य को भगता नाच के नाम से भी जाना जाता है।
15. **बगुलो–** यह उत्तर बिहार का अत्यन्त लोकप्रिय लोक नृत्य है। इसमें ससुराल से रूठकर जाने वाली एक स्त्री का राह चलते दूसरे स्त्री के साथ नोंक–झोंक का बड़ा ही सजीव चित्रण किया जाता है।
16. **कजरी–** यह सावन के महीने में गाया और खेला जाने वाला एक नृत्य नाटिका है। जो सावन के सुहावने मौसम को और भी सुहावना बना देता है।
17. **झरणी–** मुसलमानों द्वारा मुहर्रम के अवसर पर झूमते हुए गाया जाने वाला एक प्रकार का नृत्य और गीत है।
18. **जट–जटिन–** एक विशेष जाति जाट और उनकी पत्नी जटिन के द्वारा किया जाने वाला गीत और नृत्य है। इसे सामान्यतः इन्द्र भगवान को मनाने के लिए वर्षा ऋतु में किया जाता है।
19. **होरी–** बसंत के आगमन पर गाया जाने वाला गीत और नृत्य होली के दिन अपने चरण पर होता है।
20. **जोगीरा नाच–** होली के अवसर पर पुरुषों द्वारा महिलाओं का स्वांग रच के किया जाने वाला नृत्य।
21. **नटुआ नाच–** मिथिला में पुरुषों के द्वारा महिलाओं का नृत्य नटुआ नाच कहलाता है।
22. **पावड़िया नृत्य–** शिशु के जन्म होने पर किन्नरों के द्वारा किया जाने वाला बधाई गीत और नृत्य पावड़िया नृत्य कहलाता है।
23. **लौंडा नाच–** यह एक विशेष प्रकार का नृत्य है जिसमें पुरुष महिला का स्वांग करके नृत्य करते हैं। बिहार में इसकी प्राचीन परम्परा है।
24. **विद्यापत–** मिथला में मैथिल कोकिल विद्यापति के गीतों का नृत्य के रूप में प्रस्तुति विद्यापत कहलाता है।
25. **झमटा–** बिहार के पश्चिम चम्पारण में रहने वाली एक मात्र जनजाति समुदाय थारूओं का लोकनृत्य झमटा अपने आप में एक सांस्कृतिक विरासत है।

गतिविधि–
1. एक ऐसे लोक नृत्य का विवरण दीजिए जो अब कहीं दिखाई नहीं पड़ता है या जिसका प्रचलन बहुत कम हो गया है।
2. अपने क्षेत्र के लोक नृत्यों से संबंधित चित्रों का संग्रह करें ।

**अभ्यास के प्रश्न–**

- आपके विद्यालय के सामाजिक क्षेत्र में किए जाने वाले लोक नृत्य की सूची बनाइए और इसके बारे में विस्तार से जानकारी एकत्रित करके एक लेख लिखिए।
- विद्यालय के किसी आयोजन में लोक नतर्क को आमंत्रित करके इनकी प्रस्तुति देखें और उस पर एक प्रतिवेदन तैयार करें।

**शास्त्रीय नृत्य–** प्राचीन हिन्दू ग्रंथों के सिद्धांतों एवं तकनीकों और नृत्य के तकनीकी ग्रंथों तथा कला संबद्धता पर पूर्ण या आंशिक रूप से आधारित है। प्रारंभिक तौर पर यह माना जाता है कि भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र को दूसरी शताब्दी ईसापूर्व के आस–पास लिखा गया था। शास्त्रीय

नृत्य की अधिकतम प्रचलित प्रणालियां उच्च स्तर की विस्तृत प्रणालियों से शासित होती थी और इनका उदय आम आदमी के बीच से होता था। शास्त्रीय नृत्य और लोक नृत्य के बीच मुख्य अन्तर इनके नियम बद्धता एवं विस्तार का है। नृत्य और नाट्य कला अपने अग्रिम सिद्धांतों और शास्त्रों के नियमों का कड़ाई से पालन करते हैं।

**शास्त्रीय नृत्य से संबंधित एक शिक्षक मोहन जी के संस्मरण**

पिछले वर्ष जनवरी माह की बात है। मेरे शहर में बौद्ध महोत्सव का आयोजन हुआ। इसमें कत्थक नृत्य के महान कलाकार पंडित बिरजू महाराज का कार्यक्रम भी था। मैं अपने दोस्तों के दबाव पर कार्यक्रम देखने चला गया। कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। एक फूहड़ सा नृत्य प्रारंभ हुआ । चारों तरफ से शोरगुल होने लगे। दर्शकों की संख्या बढ़ने लगी। कुछ समय के बाद नृत्य समाप्त हुआ तथा पंडित बिरजू महाराज के कार्यक्रम की उद्घोषणा हुई। पंडित जी कत्थक नृत्य की बारीकियाँ बताते हुए अपने कई नृत्य प्रदर्शित किए। मुझे यह अच्छा नहीं लग रहा था या यों कहें मुझे इसकी समझ नहीं थी। मेरे बगल में बैठे हुए एक विदेशी दर्शक ने मुझे इस नृत्य की बारीकियाँ समझाई। मैं झेंप गया, मुझे लगा कि मैं अपनी संस्कृति के प्रति संवेदनशील नहीं हूँ, जितना की एक दूसरे देश के व्यक्ति को हमारी संस्कृति और विरासत की खूबियाँ अपनी ओर आकर्षित करती हैं। मेरा नज़रिया अब बदल चुका था। मेरे द्वारा इन शास्त्रीय नृत्यों को देखने का नज़रिया बदल गया था। अब मैं दूरदर्शन पर प्रसारित अखिल भारतीय नृत्य के कार्यक्रम का नियमित दर्शक हूँ, जबकि पहले मैं इन कार्यक्रमों के प्रसारण प्रारंभ होते ही चैनल बदल दिया करता था।

आप इस संस्मरण से क्या सोचते हैं। आपको ऐसा नहीं लगता कि हम अपनी परम्पराओं और सांस्कृतिक विरासत को भुलते जा रहे हैं तथा नकल की परम्परा को अपनाने लगे हैं। हमारी कलात्मक संवेदनशीलता दिशा परिवर्तित करती जा रही है।

आइए, शास्त्रीय नृत्य के कुछ महत्त्वपूर्ण पहलू को समझने का प्रयास करते हैं।

भारतीय शास्त्रीय नृत्य के तीन मुख्य अवयव हैं–

1. नृत्त 2. नृत्य 3. नाट्य

- **नृत्त–** इसके मुख्यतः दो हिस्से हैं। पहला ताल कहलाता है जो समय के मापन को प्रदर्शित करता है जबकि दूसरा लय है जो गति को दिखाता है। नृत्त, को नृत्य के शुद्ध स्वरूप में जाना जाता है जिसमें शारीरिक गतिशीलता एवं सौंदर्य प्रदर्शित होता है परन्तु रस और भाव का अभाव होता है। नृत्त दो प्रकार के होते हैं–
  (1) ''ताण्डव'' जिसमें बल प्रधान है। (2) ''लास्य'' जिसमें शोभा प्रधान है।

- **नृत्य–** नृत्य में रस और भाव प्रधान है। शाब्दिक रूप में रस का अर्थ 'स्वाद' या महक है और पद आनन्दातिरेक या मनोदशा है, जिसका अनुभव दर्शक किसी नृत्य (अभिनय) प्रदर्शन को देखकर करता है। नृत्य में नौ रस होते हैं– (1) शृंगार रास (2) हास्य रस (3) करूण रस (4) रौद्र रस (5) वीर रस (6) भयंकर रस (7) विभत्स रस (8) अद्भुत रस (9) शान्त रस। इन रसों के संगत भाव भी हैं, प्रेम, हास्य, दुख, क्रोध, ऊर्जा, भय, निराशा, आश्चर्य एवं शान्ति। इनमें दो प्रकार के भाव हैं। एक तांडव, जो शिव के रौद्र,

पौरुष भाव को प्रदर्शित करता है जबकि दूसरा ''लास्य'' है जो शिव की पत्नी पार्वती के लयात्मक लावण्य का प्रतिनिधित्व करता है। उदाहरणस्वरूप भरतमुनि के नाट्यशास्त्र से जन्मे भरतनाट्यम में लास्य की प्रधानता है जबकि केरल की कथकली में तांडव भाव की मूकाभिनय है। कत्थक नृत्य लास्य और तांडव का मिश्रण है। मणिपुर का नृत्य मणिपूरी अपनी मुद्राओं के वजह से विशिष्ट है। इसमें भी लास्य भाव की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। इनके अतिरिक्त आन्ध्रप्रदेश की कुचिपुड़ी भरतनाट्यम से मिलती जुलती है जबकि ओडिसा की ओडिसी नृत्य शैली त्रिभंग शैली से विकसित हुई है। इनके अलावा झारखण्ड, उड़ीसा और बंगाल की लोक नृत्य ''छउ नृत्य'' तथा आसाम की सत्ततीय नृत्य को शास्त्रीय नृत्य की श्रेणी में सम्मिलित कर लिया गया है। इनके अवलोकन से हम आसानी से ज्ञात कर सकते हैं कि इनमें ताण्डव और लास्य भाव का मिश्रण है।

- **नाट्य–** प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार नृत्य को नाट्य का महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता है। नाटक के कलाकार को अपने संवाद बोलने की कला के साथ–साथ गायन और नृत्य का भी ज्ञान होना चाहिए। अतः भरतमुनि के अनुसार ''नाट्य'' शब्द का अर्थ है वैसा प्रदर्शन कला जिसमें नाटक, संगीत नृत्य के द्वारा रस और सौंदर्यबोध का मिश्रण हो। नाट्य, अभिनय की मदद से प्रस्तुत की जाती है। अभिनय के मुख्य अंग निम्नांकित चार हैं–

  1. आंगिक 2. वाचिक
  3. आहार्य 4. सात्विक

  आइए अभिनय के इन अंगों को समझते हैं–

  आंगिक–इसका अर्थ है शारीरिक अंग संचालन द्वारा भाव की अभिव्यक्ति करना।

  वाचिक– संवाद संप्रेषण

  आहार्य– मंच सज्जा, वस्त्र विन्यास– आभूषण एवं मेक–अप (रूप–सज्जा) आदि

  सात्विक– आन्तरिक भाव या स्वेच्छिक भाव भंगिमा का प्रदर्शन

गतिविधि –

1. विभिन्न शास्त्रीय नृत्यांगनाओं की सूचि बनवाइए एवं इनके नृत्य मुद्राओं के चित्रों का संकलन करवाएँ।
2. अपने आस –पास के किसी शास्त्रीय नृतक को आमंत्रित कर इनके नृत्य कार्यक्रम का आयोजन करवाएँ।

**अभ्यास के प्रश्न–**

- निम्नलिखित भारतीय शास्त्रीय नृत्यों की सूची को भारत के मानचित्र में क्षेत्रों (राज्य) के आधार पर अंकित कीजिए व इनका विस्तृत विवरण एकत्रित कीजिए।

  1. कत्थक 2. कथकली 3. भरतनाट्यक 4. कुचीपुड़ी
  5. मणिपुरी 6. ओडीसी 7. छउ नृत्य 8. सत्तीय नृत्य

- शास्त्रीय नृत्य के प्रति बच्चों की रुचि बढ़ाने के लिए आप क्या करेंगे? विस्तार से लिखिए।

- आपके विद्यालय के बच्चों को शास्त्रीय नृतय सिखाने में क्या कठिनाइयां आ सकती हैं? आप इनका निराकरण कैसे करेंगे?

**सृजनात्मक नृत्य–** वर्तमान समय में नृत्य की कई शैलियाँ विकसित हो गई हें जिनमें संसार की कई नृत्य विधाओं का मिश्रण दिखाई पड़ता है। आपने टी.वी. के कई चैनलों पर नृत्य प्रतियोगिता के कार्यक्रम देखे होंगे। आपने ऐसे नृत्य देखे होंगे जो न तो लोक नृत्य हैं और न ही शास्त्रीय। इन्हें सृजनात्मक नृत्य की श्रेणी में रखा जा सकता है, जैसे– रोबोट नृत्य, ब्रेक डांस, हीप–हॉप, फ्यूज़न। भारतीय सिनेमा इस प्रकार के नृत्य शैली का जन्म माना जा सकता है। इस प्रकार कीनृत्य यद्यपि हमारे सांस्कृतिक परम्पराओं का परिचायक नहीं है। अपितु इनमें कलाकारों के कला क्षमता या कुछ नया करने का जज़्बा दिखाई पड़ता है। इसका एक सकारात्मक पहलू यह है कि बच्चों को अत्यन्त प्रभावित करते हैं।

यहाँ वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह प्रासंगिक होगा कि कला के माध्यम से शिक्षा में यह आवश्यक नहीं है कि कला प्राचीन/पारम्परिक है या सृजनात्मक अपितु इनसे बच्चों के शिक्षण अधिगम प्रक्रिया कहाँक तक प्रभावित होता है।

### 2.4.3 रंगमंच

बच्चों को रंगमंच पर अभिनय के लिए प्रशिक्षित करना स्कूल की सर्वाधिक प्रिय क्रियाओं में से एक है जिससे वे कार्यक्रमों में उत्कृष्ट प्रदर्शन कर पाते हैं। यह प्रायः महसूस नहीं किया जाता कि बच्चों पर लादी गई यह एक वयस्क भावना है और बच्चे अपने बड़ों का अनुसरण करने में प्रवीण होते हैं।

प्रदर्शन कला के विभिन्न आयामों में नाटक का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन भारत में भरतमुनि ने नाटक के विभिन्न तत्वों की रचना की, समाज को रंगमंच के विभिन्न पहलूओं की जानकारी उपलब्ध कराई, रंगमंच की उपयोगिता को इस तरह प्रमाणिक किया जो कि आगे चलकर भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के रूप में प्रसिद्ध हुआ। नाटक अपने आप में तमाम कलाओं का संगम है। जीवन के हर क्षेत्र में इसका उपयोग है।

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न सा यौत्रां न तत्कर्म; नाट्येऽस्मिन यन्नदृश्यते।।

अर्थात् कोई ज्ञान, कोई शिल्प, कोई विद्या, कोई कला, कोई योग तथा कोई कर्म ऐसा नहीं है जो नाट्य में दिखाई न दे। प्रदर्शन कलाओं में नाटक की सर्वविदिता के कारण इसकी यही विशेषता है। नाटक एक ऐसी विद्या है जिसके माध्यम से हम अपने विचारों का प्रभावी संप्रेषण तो कर ही सकते हैं साथ ही शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में समावेश भी कर सकते हैं।

स्वभाव से ही बच्चे खोजी प्रवृत्ति के होते हैं और जल्दी किसी बात पर विश्वास नहीं करते। वे बिना बड़ों के सहयोग लिए विचारों को प्रयोग करते हुए अपने नाटक का प्रदर्शन कर सकते हैं। दरअसल उनके लिए नाटक एक खेल की तरह है। ऐसा देखा गया है कि नाटक के

माध्यम से विद्यार्थी धीरे–धीरे बड़ों की दुनिया में शामिल हो जाते हैं। नाट्य शैली भारत की प्राचीनतम शैलियों में से एक है। भारतीय नाट्य शैली का इतिहास प्राचीन वैदिक काल से शुरू होकर शास्त्रीय नाट्य परम्परा से गुज़रते हुए आधुनिक नाट्य शैली खास तौर पर हिन्दी, मराठी और बंगाली नाट्य शैली पर भी प्रभाव डालता है।

पारम्परिक नाट्य शैलियाँ समाज के आदर्शों, उसके जीवित रहने के दृढ़ संकल्प पर, उसकी प्रकृति, उसके मनोभावों साहचर्य–भावना आदि पर मंथन करती दिखती हैं। लगभग सभी प्रकार के पारम्परिक नाट्य शैलियों में संगीत और गायन कला की मुख्य भूमिका देखने को मिलती है। नाटकों में इस्तेमाल पारम्परिक संगीत, समुदाय की भावनाओं की अभिव्यक्ति है। नाटकों में इस्तेमाल की जाने वाली भाषा प्रायः स्वाभाविक और उस समय की परिस्थितियों से सहज ही उभरती है। पूरे साल भारत के विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न प्रकार के त्योहार मेले आदि होते रहते हैं। इन विशेष अवसरों पर पारम्परिक नाटकों का मंचन होता है।

नाटक तो मंच पर गलियों में सड़कों पर और विशेष उत्सवों में की जाने वाली मनोरंजक गतिविधि है। अब प्रश्न यह है कि विद्यालयी पाठ्यपुस्तकों एवं पाठ्यक्रमों में नाट्य कला का भला क्या काम है? एक शिक्षक को नाटक और नाट्य शैली के बारे में जानना क्यों जरूरी है? आखिर वर्ग शिक्षण में नाटक से क्या लाभ है?

नाटकीकरण बहुत छोटी उम्र से बच्चों की जीवन का हिस्सा होता है। बच्चे लगभग तीन या चार साल की उम्र से दृश्यों और कहानियों का अभिनय करने लगते हैं। आपने बच्चों को गुड्डे–गुड़ियों का खेल रचाते देखा होगा। बच्चे अपने भावी जीवन की कल्पना और अनुभव इस नाटकीकरण के माध्यम से करना चाहते हैं। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि बच्चों के पास अपने विचारों के संप्रेक्षण के लिए एक समृद्ध भाषा नहीं होती है, वे अपने मनोभावों का संप्रेषण इन्हीं छोटी–छोटी नाटकीकरण के माध्यम से करते हैं। दरअसल इन क्रियाओं में उनका भविष्य छिपा होता है। मनोवैज्ञानिकों की मान्यता है कि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में एक से अधिक ज्ञानेन्द्रियों का क्रियाशील होना इसकी गति को बढ़ा देता है। रंगमंच बच्चों को वह माध्यम प्रदान करता है जिसमें एक से अधिक इन्द्रियां एक साथ सक्रिय होती हैं, जैसे– आँख, कान। एक चीनी लोकोक्ति जो संभवतः शिक्षा में रंगकर्म की जरूरत को सटीक ढंग से स्पष्ट करती है।

मैंने सुना – मैं भूल गया।
मैंने देखा – मुझे याद रहा।
मैंने किया – मैं समझ गया।

रंगमंच बच्चों में निम्नांकित कौशलों के विकास का द्वार स्वतः ही खोल देता है।

1. कल्पना करना
2. सामाजिक संवेदना
3. सहयोग की भावना
4. एकाग्रता
5. संप्रेषण कौशल
6. समस्या का हल ढूँढना
7. मनोरंजन
8. भावात्मक विकास
9. आत्मानुशासन
10. सामूहिक भरोसा एवं विश्वास
11. स्मरण शक्ति का विकास
12. सामाजिक जागरुकता
13. सौन्दर्य बोध का विकास

इस प्रकार आप यह समझ सकते हैं कि एक नाटकीकरण की प्रक्रिया बच्चों में कई कौशलों का स्वतः विकास करता है। आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षक दक्षता के साथ इन गतिविधियों का इस्तेमाल अपने शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में होशियारी से करे। विद्यालय में आपसी सौहार्द कायम करने का यह उत्कृष्ट अस्त्र है।

| |
|---|
| गतिविधि –<br>1. एक प्रचलित नाटक की प्रस्तुति कराएँ।<br>2. कुछ प्रचलित नाटकों एवं उनसे संबंधित चित्रों की सूची तैयार करवाएँ |

**अभ्यास के प्रश्न–**

1. आपके विद्यालय के बच्चे आपस में हमेशा लड़ते–झगड़ते हो तो आप कला के किस विद्या का इस्तेमाल कर विद्यालय में सौहार्द एवं भाईचारे के वातावरण का निर्माण करेंगे? और कैसे?
2. विभिन्न विषयों के शिक्षण में नाटक का समावेश कैसे करेंगे ताकि सीखने–सिखाने की प्रक्रिया तीव्र हो सकें।

**लोक रंगमंच–** भारत विभिन्न सांस्कृतिक धरोहरों का देश है। लोक रंगमंच सामाजिक उत्सवों एवं परम्पराओं में रचा बसा है। आज हमारी विरासत खतरे में दिखाई पड़ती है। क्योंकि इस दौड़ती–भागती दुनिया में इलेक्ट्रोनिक मीडिया का अत्यधिक प्रभाव पड़ने लगा है। मनोरंजन के कई साधन विकसित हो गए हैं। जो व्यक्ति को एकांकी जीवन की ओर ढकेलने लगी है। सामाजिक और सामूहिक गतिविधियों से लोग विरक्त होने लगे हैं। लोगों ने शिकायतों का निराकरण इस जवाब से करना प्रारंभ कर दिया है ''समय नहीं है''। मनोरंजन की परिभाषा बदल गई है। यह अत्यन्त दुःख का विषय है कि हम अपनी विरासत एवं संस्कृतियों की पहचान विदेशियों के उत्सुकता के आधार पर करने लगे हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि इन परिस्थितियों में हम शिक्षकों का क्या कर्तव्य है तथा हमें इस क्षेत्र में क्या–क्या करने की आवश्यकता है ताकि बच्चों की संवेदना को कला के क्षेत्र में जागृत किया जाए और शिक्षण अधिगम प्रक्रिया से इसे जोड़ा जाए।

हमें बच्चों को अपने क्षेत्र की लोक नाट्य परम्पराओं के बारे में जानने के लिए प्रेरित करना चाहिए। रामलीला रासलीला एवं अन्य उत्सवों के मंचन को देखने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए। जिसकी वे कक्षा में आकर अन्य विद्यार्थियों से विशेषकर प्रदर्शन में विभिन्न भूमिकाओं, उनकी जीवन शैली, आंतरिक समस्याओं, रूचि इत्यादि जो उन्होंने देखी है और जिससे वे अपने आस–पास के जीवन को समझेंगे।

लोक रंगमंच के कई उदाहरण हमारे प्रांत में देखने को मिलते हैं। जैसे– नौटंकी, विदेसिया आदि।

**आधुनिक रंगमंच–** रंगमंच की कई विधाएँ विश्व में प्रचलित हैं। वर्तमान में नये परिवर्तन के साथ रंगमंच को आधुनिक रंगमंच की संज्ञा दी गई है। इसमें कई प्रकार के प्रयोग किए जा रहे हैं। आइए, नाटक करने की विभिन्न विधाओं को समझते हैं–

1. **मंचीय नाटक–** सामान्यतः मंचीय नाटक की प्रस्तुति मंच पर होती है। नाटकों के मंच की तैयारी विशेष प्रकार से किया जाता है। मंच पर प्रकाश की व्यवस्था, पर्दे और विंग्स की व्यवस्था की जाती है जिससे पात्रों का प्रवेश एवं निकास तथा दृश्यों के बदलने की प्रक्रिया को जीवंत किया जाता है। कहीं–कहीं मंच पर मुख्य पर्दे की व्यवस्था की जाती है जिसे प्रारंभ होने, दृश्य बदलने एवं समाप्त होने पर इस्तेमाल किया जाता है। परन्तु आधुनिक रंगमंच में प्रकाश व्यवस्था से इसका काम लिया जाता है। पारम्परिक रंगमंच या लोक रंगमंच नौटंकी, विदेशिया आदि की प्रस्तुति में मंच के पिछली दीवार पर चित्रित पर्दे का उपयोग होता था। आधुनिक रंगमंच में इस परम्परा को बदल दिया गया है। अब तो कई इलेक्ट्रोनिक ध्वनि एवं प्रकाश की व्यवस्था की जाती है। इसमें कम्प्यूटर, इन्टरनेट आदि आधुनिक तकनीकों का भी सहारा लिया जाता है। वस्त्र विन्यास एवं अन्य व्यवस्थाओं का स्वरूप भी बदला है।

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि आधुनिक रंगमंच में संप्रेषण की विधियाँ भले ही बदल गई हों परन्तु इस बात पर ज़ोर दिया जाता है कि विषयवस्तु का प्रभावी प्रस्तुति किया जाए।

2. **नुक्कड़ नाटक–** जैसा की नाम से पता चलता है कि नुक्कड़ पर की जाने वाली नाटक नुक्कड़ नाटक कहलाती है। नुक्कड़ नाटक जनसामान्य के लिए होता है। नुक्कड़ नाटक की परम्परा समाज में नई नहीं है बल्कि प्राचीन काल में जागरण गाँव में मुनादी आदि के रूप में शुरू होकर एक निश्चित उद्देश्य के साथ अपने वर्तमान रूप में विकसित हुआ है। जहाँ पर मंचीय नाटक की पहुँच नहीं है वहाँ नुक्कड़ नाटक आसानी से पहुँच जाती है। इन नाटकों की एक विशेषता है कि अभिनयकर्ता और दर्शक, नाटक प्रदर्शन के दौरान एक दूसरे के बेहद करीब होते हैं। इनमें मंचीय नाटक की तरह विशेष व्यवस्था की आवश्यकता नहीं होती। नुक्कड़ नाटकों के माध्यम से हम ज्वलंत सामाजिक–राजनैतिक मुद्दों को प्रभावी तरीके से उठाते हैं। नुक्कड़ नाटकों को लोकप्रिय बनाने में सफदर हासमी का नाम बड़े ही सम्मान से लिया जाता है।

3. **एकांकी–** एक अंक वाले नाटक को एकांकी कहा जाता है। रंगमंच में एकांकी किसी घटनाक्रम के किसी पहलू की झलक मात्र है।

4. **मूकभिनय नाटक–** मूक यानि बिना बोले अभिनय द्वारा किसी स्थिति या मनस्थिति भाव आदि को व्यक्त करना मूकभिनय है। इस मूकभिनय के माध्यम से सम्पूर्ण नाटक की प्रस्तुति भी की जाती है। इस प्रकार के नाटकों की यह विशेषता है कि इसे मंच पर या नुक्कड़ पर भी आसानी से प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

5. **एकाभिनय–** जब एक ही कलाकार सम्पूर्ण नाटक में विविध पात्रों एवं चरित्रों को एक साथ अभिनित करता है तो उसे एकाभिनय कहते हैं।

6. **इंप्रोवाइजेशन–** नाटक की इस विधा के माध्यम से हम बच्चों में नाटकीकरण की प्रक्रिया का विकास करा सकते हैं। इसमें कुछ परिस्थितियाँ बच्चों के समक्ष रखी जाती हैं तथा उनका अभिनय करने का कहते हैं। इस अभ्यास से बच्चों में अभिनय की क्षमता का विकास होता है।

उपर्युक्त चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक रंगमंच, अभिनय कला एवं प्रस्तुति प्रक्रिया का विकसित स्वरूप है। आधुनिक तकनीक एवं रंगमंच के सम्मिलित स्वरूप को आधुनिक रंगमंच कहते हैं।

**कक्षा में नाटक कैसे करवाएँ?**

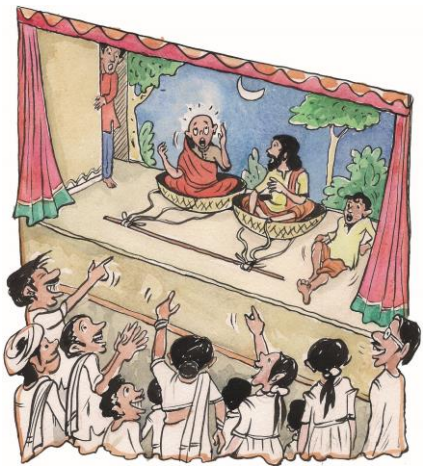

सभी बच्चे अभिनय में अच्छे नहीं होते खासकर के तब जब नाटक उनके पहले भाषा पाठ्यक्रम का हिस्सा नहीं होता। छोटे–छोटे चरणों के साथ अपनी कक्षा में नाटक से बच्चों का परिचय कराएं। सरल व मार्गदर्शित गतिविधियों से शुरुआत करें जैसे किसी दानव की नकल करो और फिर जैसे–जैसे बच्चों का आत्मविश्वास बढ़े तो कम नियंत्रित गतिविधियों की ओर बढ़ें। आपको आश्चर्य हो सकता है कि आपको उन्हें साधारण सी चीज़ें जैसे– अपने हाथों को फैलाना, छोटे और बड़े कदम लेना और मनोभावों को प्रदर्शित करने के लिए अपने चेहरे और पूरे शरीर का इस्तेमाल करना सिखाना पड़ता है।

बच्चों को नाटकीकरण में ले जाने के लिए संपूर्ण शारीरिक क्रिया वाली गतिविधियां एक शानदार तरीका है। बच्चे भाषा के प्रति अपने शरीरों से प्रतिक्रिया करते हैं, जो स्वांग और अभिनय की तरफ पहला कदम है। बच्चें को अक्सर यह आभास नहीं होता कि वे चीजों को अलग–अलग ढंग से कह सकते हैं। उनसे शब्दों या वाक्यों को जोर से, धीमे से, क्रोधी स्वर में या दुखी स्वर में बोलने के लिए कहना भी उनके लिए अपनी आवाजों की शक्ति को पहचानने का अच्छा तरीका हो सकता है। बच्चों को यह महसूस होना जरूरी है कि आपके भीतर नाटकीकरण के प्रति जोश है और आप अपने द्वारा प्रस्तावित गतिविधियों को करने में मज़ा लेते हैं। आप उनके लिए एक प्रारूप या आदर्श की तरह काम करते हैं और उन्हें कक्षा में सक्रिय रहने के लिए प्रोत्साहन देते हैं। बच्चे अधिकांश गतिविधियां खड़े रहकर करते हैं अतः कक्षा कक्ष को इस प्रकार व्यवस्थित करें कि सामने पर्याप्त जगह उपलब्ध हो जाए। यदि बच्चे गोले में खड़े हों या समूहों में काम कर रहे हों तो आपको ज्यादा जगह की जरूरत होगी। टेबल और कुर्सियों को कक्षा के एक कोने में सरका दें या फिर बच्चों को बाहर ले जाएं। आप किन्हीं व्यावसायिक अभिनेताओं या अभिनेत्रियों को प्रशिक्षित नहीं कर रहे हैं बल्कि बच्चों को हिन्दी भाषा का अभ्यास और उसका इस्तेमाल करने का एक रोचक तरीका सीखा रहे हैं। बच्चों ने जो कुछ भी किया हो, न केवल अंतिम उत्पाद और भाषा बल्कि जिस प्रक्रिया से वे गुजरे, जिस तरह उन्होंने एक दूसरे का सहयोग किया और कैसे उन्होंने अपने निर्णय लिये, आप इस सबका विश्लेषण करते हुए अपनी प्रतिक्रिया दें। कुछ अच्छी बात देखकर उस पर टिप्पणी करें। बच्चों के काम में ऐसे क्षेत्र भी रहेंगे जिनमें सुधार की गुंजाइश होगी और बच्चों को बताए जाने वाले अपने विश्लेषण में आपको यही बात उजागर करनी होगी। जब बच्चे गतिविधि में संलग्न हों तो उन्हें ध्यान से देखें और सुनें, दखल न देने की कोशिश करें और जो आप देखें उसके नोट्स बनाते जाएं। आपका मुख्य लक्ष्य है इस सारी प्रक्रिया पर बच्चे के प्रदर्शन को इस पाठ के सबसे अहम हिस्से के रूप में देखेंगे। आपको उनके प्रदर्शनों को महत्व देना चाहिए। जब वे अपना काम खत्म कर लें, तो आप कुछ समूहों से अपना काम दिखाने को कह सकते हैं और

फिर उन्हें अपनी प्रतिक्रिया दे सकते हैं। ऐसा करने के कई तरीके हो सकते हैं। आप उनके करने के लिए एक प्रतिक्रिया शीट तैयार कर सकते हैं और उसका उपयोग कर सकते हैं। यदि रचनात्मक प्रतिक्रिया नाटकीकरण की गतिविधियों का नियमित हिस्सा बन जाए, तो बच्चे धीरे–धीरे नाटकीकरण की अपनी क्षमताओं और अपनी भाषा में सुधार कर लेंगे।

**कठपुतली कला–** भारत की प्राचीन प्रदर्शन कलाओं में से एक कठपुतली कला भी है। पुतली के माध्यम से कथा कहने की प्राचीन परम्परा भारत के कई प्रांतों में पाई जाती है। सामान्यतः रामायण, महाभारत और पुराणों की कथाओं को इस माध्यम से संप्रेषित किया जाता था। गाँव के लोग अपने काम से निवृत्त होकर इकट्ठे होकर कठपुतली कला का आनंद लिया करते थे। इसमें मनोरंजन के साथ प्राचीन परम्पराओं और धार्मिक ऐतिहासिक ज्ञान से रूबरू हो जाते थे। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि कठपुतली बनाने और चलाने का कार्य पारिवारिक रूप से पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित होता रहता है। पुतली चलाने वाले परिवार अपनी पुतलियों को परिवार के सदस्य मानते हैं। किसी क्षेत्र में खराब हो गई पुतली (puppet) को सम्मानपूर्वक दफना देने की परम्परा भी है।

सामान्यतः पुतली चार प्रकार की होती है।

1. छड़ पुतली (Rod Puppet)
2. दस्ताना पुतली (Gloves puppet)
3. छाया पुतली (Shadow puppet)
4. धागा पुतली (string puppet)

पुतली की बनावट और संचालन के आधार पर इनको वर्गीकृत किया गया है। इनके अलावा भी कई प्रकार की पुतली आजकल प्रचलन में है, जैसे– अँगुली पुतली (Finger puppet), मुख पुतली (Muppet) आदि। वर्तमान समय में संचालन एवं बनावट के संदर्भ में कई प्रकार की पुतली बनाई जाती है जिनमें आधुनिक तकनीक का भी इस्तेमाल किया जाता है।

पिछले दिनों मतदान हेतु जागरुक करने के लिए बच्चों के माध्यम से कई कार्यक्रम आयोजित किए गए। इनमें भाषण का सहारा लिया गया। लोग इस कार्यक्रम से बहुत प्रभावित नहीं हुए । मेरे एक मित्र हैं, उन्हें पुतली बनाने और चलाने की थोड़ी दक्षता है। मैंने उन्हें उस कार्यक्रम के लिए प्रेरित किया। फिर क्या था, वे अपने पुतुल का बक्सा लेकर मेरे साथ गाँव –गाँव घुमने लगे। लोगों की भीड़ इकट्ठा हो जाती। बच्चे भी मज़ा लेकर कार्यक्रम देखते और निर्वाचन आयोग का संदेश मतदाता जागरुकता के संदर्भ में प्रभावपूर्ण तरीके से संप्रेषित होने लगा।

मैं इस घटना से बहुत प्रभावित हुआ तथा यह सोचने लगा कि मैं विषय की कठिन अवधारणाओं को वर्ग कक्ष में, पुतली (puppet) के माध्यम से समझा सकते हैं। क्या आप भी ऐसा सोचते हैं ? यदि ऐसा है तो विचार करें कि ऐसा कैसे संभव है ?

गतिविधिः–
1. पुतली निर्माण कार्यशाला का आयोजन करवाएँ।
2. किसी एक विषय से संबंधित एक पुतली मंचन का कार्यक्रम का आयोजन करवाएँ

**अभ्यास प्रश्न–**

1. भाषा के शिक्षण में पुतली कला का उपयोग करते हुए एक योजना बनाइए।
2. विभिन्न प्रकार की पुतलियों के निर्माण एवं उनका संचालन करने के लिए विद्यालय स्तर पर एक कार्यशाला का आयोजन कीजिए और इसका प्रतिवेदन (Report) बनाइए।

पुतली कला के माध्यम से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया आसान हो जाती है साथ ही शिक्षण प्रभावी हो जाता है। बच्चों के साथ पुतली का निर्माण उनका संचालन और पुतली नाटकों का मंचन एक सामूहिक प्रक्रिया है। यदि इसे विषय के साथ जोड़ दिया जाए तो बच्चे करके सीखने की प्रक्रिया में स्वतः संलग्न हो जाते हैं। यहाँ यह बता दें कि पुतली कला के स्थानीय कलाकार के माध्यम से या प्रशिक्षित शिक्षक के माध्यम से पुतली नाटकों का उपयोग करना आसान हो जाता है।

## 2.5 कला के विभिन्न रूपों का महत्व :

कला के विभिन्न रूपों से आशय है– दृश्य कला एवं प्रदर्शन कला के विभिन्न आयामें से है। दृश्य कला के अन्तर्गत जहाँ चित्रकला, मूर्तिकला, फोटोग्राफी, छपाई कला जो द्विविमीय या त्रिविमिय हो सकती है, जैसे– पेन्टिंग, कोलाज आदि द्विविमीय तथा मूर्तिकला, पुतलीकला, मूर्ति के शिल्प, काष्टकला, काजग के शिल्प पेपरमेशी त्रिविमीय के उदाहरण हैं। इस कला के अन्तर्गत शिल्प की वस्तुएँ जिन्हें उपयोगी कला के रूप में जाना जाता है। दृश्य कला का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वैसे तो कला के माध्यम से कल्पना की अभिव्यक्ति होती है लेकिन जिस सहजता से कल्पनाओं की सार्थक अभिव्यक्ति दृश्य कला के माध्यम से होती है। वास्तव में दृश्य कला कल्पना, सोच, अनुभवों का मूर्तन है। दृश्य कला शिक्षार्थियों के अशाब्दिक–भावों को सहजता से अभिव्यक्त करने के लिए प्रोत्साहितक करती है। नए सृजन और पुराने अनुभवों की निरन्तरता को सुनिश्चित करती है। प्रदर्शन कला के अन्तर्गत संगीत, नाटक, नृत्य मूक अभिनय आदि आते हैं। प्रदर्शन कला हमारे जीवन का अभिन्न अंग है जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जीवन के विभिन्न पहलूओं को प्रभावित करती रहती है। यह शिक्षार्थियों के शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक एवं आध्यात्मिक विकास का आधार है। सामान्यतः प्रदर्शन कला में हम समूह में कार्य करते हैं। इससे समूह भावना, अनुशासन व नेतृत्व जैसे जीवन कौशलों का विकास होता है। समूह में कार्य करने से समन्वयन, भाईचारा लगाव की भावना का विकास होता है। इस कला में जीवन की विभिन्न कठिनाइयों व परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है जिससे सृजनात्मक सोच एवं व्यवहार का विकास होता है। इस कला में कक्षाओं के शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व निखारने में कर सकते हैं, जैसे– शिक्षार्थियों को खुशी, एकाग्रता, संतुष्टि, शांति व आनन्द का

अनुभव होता है। अनेकता में एकता एवं समूह भावना का विकास होता है। शिक्षार्थियों की थकान व सुस्त मस्तिष्क को स्फूर्ति प्राप्त होती है। यहाँ आप देख सकते हैं कला के विभिन्न रूपों का अलग–अलग अपना महत्त्व रखते हैं। शिक्षार्थियों के अलग–अलग गुणों का विकास इसके माध्यम से होता है।

## 2.6 प्रदर्शन कला, योजना, तैयारी, प्रस्तुतिकरण

आपने कई प्रकार के प्रदर्शन कला का आनंद उठाया होगा। जैसे नाटक, संगीत (गायन व वादन), कठपुतली कला आदि। वस्तुतः ये सभी प्रदर्शन कलाएँ जीवन से जुड़ी घटनाओं पर ही आधारित होते हैं या वास्तविक जीवन के क्रियाकलापों की अनुकृति है। आप विद्यालय के बच्चों को उनके जीवन से जुड़ी अनुभूतियों जैसे भ्रमण स्थलों के अनुभव, आस–पड़ोस के अनुभव या फिर विद्यालय से जुड़ी घटनाओं से संबंधित अनुभवों के आधार पर प्रदर्शन कला के भिन्न–भिन्न माध्यमों में किसी एक थीम पर अपने सहपाठियों से विचार–विमर्श करने का निर्देश दे। बच्चों के आपसी समझ के बाद उनके द्वारा तैयार की गई थीम पर अपना महत्त्वपूर्ण सुझाव और दिशा बोध की आवश्यकता हो तो दें। बच्चों द्वारा प्रदर्शन कला के किस माध्यम को अपने थीम की प्रस्तुति के लिए चुना है इसके लिए उनकी तैयारी क्या है? इसका अवलोकन करें। यदि उन्होंने नाट्य विधा का चयन किया है तो आपसी समन्वय और पात्रों के चयन एवं संवाद के चयन में आप अपना सहयोग दें। अब उन्हें नाट्यविधा में उनके स्वाभाविक अभिनय क्षमता को प्रकट करने के लिए प्रोत्साहित करें। संवाद कैसा होना चाहिए? तथा कब किसे अपने संवाद बोलने चाहिए तथा संवाद बोलने के लिए किस तरह के उतार–चढ़ाव की आवश्यकता है। इस पर एक आपसी सहमति बनाने का प्रयास करेंगे। तैयारी के लिए आवश्यक सामग्री का चयन तथा आवश्यक तैयारी के लिए समय निर्धारित करेंगे। यही आपसी समझ संगीत कला एवं पुतली कला में करेंगे। अच्छी तैयारी के पश्चात् अपने विद्यालय में इन कलाओं का समय–समय या वर्ग कक्ष संचालन को रोचक एवं जीवंत बनाने हेतु प्रस्तुत करेंगे।

## 2.7 समेकन

प्रदर्शन कला में संगीत अत्यंत अमूर्त है, दृश्यमान नहीं है। संगीत में जब तक भाषा न जोड़ी जाए, बच्चे के लिए तब तक अर्थ निकालना व भाव अभिव्यक्ति संभव नहीं है। प्राथमिक स्तर पर संगीत की तकनीकी चीज़ों को सीधे–सीधे नहीं सिखानी चाहिए, जेसे– सरगम, अलंकार, स्वर आदि। इसे जब तक कविता से न जोड़ें तब तक बच्चों के लिए अर्थ निर्माण कठिन है। संगीत के प्रारम्भिक विद्यार्थियों को राग के स्वरूप को समझने के लिए लक्षण गीत सिखाया जाता है, जिसमें राग के नियमों के वर्णन के साथ राग के स्वरूप के साथ शब्द है जो कि बच्चों के लिए राग को एक मूर्त स्वरूप देते हैं। शास्त्रीय संगीत भी अत्यंत अमूर्त है और स्तर प्रधान है। अतः छोटे बच्चें को सुगम संगीत सिखाया जा सकता है। जो भाषा प्रधान है। शब्द प्रधान है, जैसे– गीत, भजन, राष्ट्रगीत, देशभक्ति गीत आदि। यानि बच्चे भाषा के माध्यम से ही संगीत का आनन्द ले पाते हैं, अर्थ निर्माण कर पाते हैं और वे संगीत को केवल गायन, वादन या नृत्य के पृथक–पृथक रूप में नहीं देखते बल्कि उनके लिए ये तीनों मिलकर एक सम्पूर्ण अभिव्यक्ति बनते हैं, साथ में नाट्य भी जुड़ जाता है। उनके लिए कहानी, नृत्य, गाना, हाव–भाव, अभिनय व गाना एक ही है।

नाटक में भाषा व अन्य सभी विषयों की अंतनिर्भरता है। संवाद के लिए भाषा सटीक व भाषा का उच्चारण शुद्ध होना चाहिए। जिस थीम पर नाटक लिखा गया है, उस विषय का गहन ज्ञान नाटककार को होना ज़रूरी है। इसके अभाव में नाटककार नाटक की पटकथा नहीं लिख सकता अर्थात् इस प्रकार विषयों एवं कलाओं की अंतनिर्भरता पर विस्तार से बात की जा सकती है। इसके अलावा कलाओं में भी आपस में एक प्रकार की अंतनिर्भरता है और नाटक इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। एक कला में दूसरी कला का समावेश करने से नये कला रूप की सृष्टि होती है और अभिव्यक्ति के प्रभाव में वृद्धि होती है। इससे दूसरे विषय को पुष्ट होने में मदद मिलती है। यहां तक कि भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में कलाओं का वर्गीकरण करते हुए लिखा है कि ''नाट्य कला ही मुख्य कला है व अन्य कलाएं गौण हैं चूंकि अन्य कलाओं का समावेश नाट्यकला में होता है।''

## 2.8 प्रदत्त कार्य :

1. ''लोकगीतों में लोक जीवन की सच्ची झांकी मिलती है।'' आप अपने स्थानीय लोक गीतों की सूची निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए एक लेख तैयार कीजिए।
   - लोक गीत क्यों गाये जाते हैं, उद्देश्य क्या हैं?
   - लोक गीत क्या मनोरंजन के लिए भी गाये जाते हैं?
   - लोक गीतों को निम्न श्रेणी में सूचीबद्ध कीजिए।
     - विवाह लोकगीत
     - ऋतु लोकगीत
     - धार्मिक अनुष्ठान गीत
     - फसलों वाले लोकगीत
     - अन्य लोकगीत
     - लोकगीत कक्षा अधिगम में किस प्रकार सहायक हो सकता है?

2. आप अपनी कक्षा के बच्चों को प्रदर्शन कला के नृत्य विधा के विषय में जानकारी दीजिए और उन्हें नृत्य करने के लिए प्रोत्साहित कीजिए। उपर्युक्त कार्य करने के लिए निम्न बिन्दुओं का ध्यान रखिए– इस पर एक लेख लिखिए।
   - आपने किस प्रकार के नृत्य की बात की और क्यों?
   - इस नृत्य की बात पर बच्चों की प्रतिक्रिया क्या थी?
   - इस नृत्य को सिखाने के लिए आपने क्या–क्या तैयारी की?
   - इसे करवाने में आपको क्या–क्या समस्याएं आई और आपने इसका समाधान कैसे किया?
   - इस कार्य में आपके और क्या–क्या सुधार करने की आवश्यकता है?
   - यह नृत्य आपके कक्षा के लिए उपयोगी था तो किस प्रकार?

3. आस–पास के किसी स्थानीय नाटककार के बारे में पता कीजिए और 500 शब्दों का एक निबन्ध लिखिए। निबन्ध लिखते समय निम्नलिखित बिन्दुओं का ध्यान रखिए–

- उन्होंने नाटक करना कब शुरू किया?
- उन्होंने नाटक क्यों शुरू किया? उद्देश्य क्या था?
- नाटक करना उन्हें कैसा लगता है? और क्यों?
- उनके प्रमुख नाटक कौन से हैं? उनके सारांश बताइए।

# इकाई– 3

## कला शिक्षा – मूल्यांकन


3.1 परिचय

3.2 उद्देश्य

3.3 पूर्व अनुभव

3.4 कला शिक्षा में मूल्यांकन का महत्व

3.5 कला शिक्षा में मूल्यांकन

3.6 मूल्यांकन संबंधी सूचनाओं का इस्तेमाल

- 3.6.1 रिपोर्टिंग और प्रतिपुष्टि (Feedback) के लिए
- 3.6.2 शिक्षक के लिए
- 3.6.3 बच्चों को संप्रेषित करना
- 3.6.4 अभिभावकों के साथ बाँटना
- 3.6.5 शिक्षक के कार्यों की प्रतिपुष्टि

3.7 कला में मूल्यांकन के विभिन्न उपागम एवं तकनीक

- 3.7.1 अवलोकन
- 3.7.2 प्रदत्तकार्यः–
- 3.7.3 परियोजनाएँः–
- 3.7.4 पोर्टफोलियो (विधार्थी फाइल)
- 3.7.5 चेक लिस्ट (जाँच सूची)
- 3.7.6 रेटिंग स्केल (श्रेणीबद्ध पैमाना)
- 3.7.7 घटना वृत्तांत व संचयी रिकार्ड
- 3.7.8 प्रदर्शन (डिस्प्ले)
- 3.7.9 साक्षात्कार

3.8 कला में संकेतक आधारित मूल्यांकन

- 3.8.1 दृश्यकला एवं प्रदर्शन कला में मूल्यांकन के लिए संकेतक का उपयोग
- 3.8.1.1 दृश्यकला में मूल्यांकन हेतु संकेतक
- 3.8.1.2 प्रदर्शन कला में मूल्यांकन हेतु संकेतक

3.9 पोर्टफोलियो बनाना (प्रायोगिक): महत्त्व, रख–रखाव

3.10 समेकन

3.11 प्रदत्त कार्य


---

## 3.1 परिचय

आइए एक ऐसी परिस्थिति की कल्पना करें ,जहाँ एक बच्ची पूरा दिन अपने से किए कलात्मक कार्य को निहार रही है। उसने कला की कक्षा में बिताए हर क्षण के मज़े लिए। हर गतिविधि में हिस्सा लिया जहाँ उसे ज़रा भी यह चिन्ता नहीं थी कि बाकी लोग उसके काम को देखकर क्या सोचेंगे। उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि थी 'आत्म संतुष्टि'। तब समझ में आता है जब शिक्षक एक –एक कर सब बच्चों की रचना को इकट्ठा कर उन पर 'ग्रेड' देने लगता है। हम समझ सकते हैं कि इससे बच्ची की सीखने की उत्सुकता पर क्या प्रभाव पड़ा होगा और इससे उसके कला से अनुभव को क्या दिशा मिलेगी।

मूल्यांकन की समझ बनाने के लिए हमें मूल्यांकन के उद्देश्यों को समझना होगा। मूल्यांकन को सीखने की प्रक्रिया का एक अभिन्न और महत्वपूर्ण हिस्सा मानना होगा। बिना इसके शिक्षण अधूरा है। मूल्यांकन को यह समझने का माध्यम बनाना होगा कि बच्चे ने क्या–क्या सीखा और अभी और क्या सीखने की ज़रूरत है। एक समय था जब अधिगम (या सीखना) मात्र बच्चों की ही ज़िम्मेदारी थी। पर हाल की खोज और शोध ने यह माना कि हर बच्चा सीख पाने में सक्षम है। आपने अपनी भाषा के पर्चे में इस बात पर विमर्श किया होगा कि कोई बच्चा किस तरह से भाषा की प्रणाली में दक्षता हासिल कर लेता है। इस तरह हम कह सकते हैं कि ज़रूर कोई अन्य कारक भी हैं जो कि सीखने में मदद करते होंगे या उसे बाधित करते होंगे। इसी संदर्भ में, मूल्यांकन हमें यह समझने में मदद करती है कि किन–किन क्षेत्रों में बच्चे को सीखने में कठिनाई आती है या वे कौन से कारक हैं जो बच्चे के अधिगम में बाधा बन रहे हैं। हम यह कह सकते हैं कि मूल्यांकन का उद्देश्य बच्चे ने कितना सीखा, यह जाँचना नहीं अपितु, बच्चे के सीखने का अनुभव व सीखने के प्रयास का मूल्यांकन होना चाहिए।

मूल्यांकन निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। इसका तात्पर्य है– बच्चों की प्रगति दर्शाने वाले विभिन्न मापदण्डों पर जानकारी एकत्रित करना जिससे बच्चे की सीखने की मात्रा की भी समझ बन सके। हम बच्चे के सीखने में प्रगति की जानकारी को संकेत के रूप में देखें तो बच्चों के प्रयास को और भी सार्थक बनाने में मदद मिलेगी।

## 3.2 उद्देश्य

- मूल्यांकन क्या है व शिक्षा प्रणाली में इसकी क्या भूमिका है की समझ विकसित करना।
- कला शिक्षा के संदर्भ में मूल्यांकन को समझना।
- विभिन्न कलाओं के संदर्भ में मूल्यांकन की विधियों व पैमानों की समझ बना पाना।
- अपने से मूल्यांकन की कुछ विधियाँ बनाना।

## 3.3 पूर्व अनुभव

हमने सम्पूर्ण शिक्षा के संदर्भ में कला शिक्षा की अहमियत के बारे में समझ बनाई। अब हमें यह जानना होगा कि कला किस तरह बच्चे के शिक्षण प्रक्रिया के लिए अनिवार्य है। कला हमारे दैनिक जीवन का हिस्सा तो है ही, मानव संस्कृति के लिए बेहद ज़रूरी एक ज्ञान–प्रणाली(नॉलेज सिस्टम) है । कला ने मानव के पुराने इतिहास को बड़ी सहजता से संभाले रखा व मानव संस्कृति का एक सुव्यवस्थित जानकरी भी दी है। कला में ही सभी ज्ञान–प्रणालियाँ सम्मिलित हैं और कला किसी भी संस्कृति का एक प्रभावशाली माध्यम है।

कला शिक्षा का उद्देश्य है व्यक्ति को वस्तु, प्रकृति के प्रति संवेदनशील बनाना, जिससे उसे उसके उपयोग और संरक्षण के प्रति जबावदेह बनाया जा सके, प्रकृति में बिखरे सौन्दर्य को महसूस करें तथा सौन्दर्य बोध विकसित कर सकें। अन्तः और बाह्य कलात्मक बोध को विकसित करें तथा आत्मीय संबंध स्थापित कर सकें।

अब बात आती है कि इस विकास को परखा कैसे जाए। यहाँ के संदर्भ में परखने की प्रक्रिया को, परीक्षाओं को , मानसिक तनाव से जोड़कर देखा जाता है। कला और मानसिक तनाव का कोई आपसी संबंध नहीं है। यहाँ तक कि कोई भी सीखने की प्रक्रिया तनावग्रस्त स्थिति में नहीं हो सकती। यहाँ हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि हमें मूल्यांकन क्यों करना चाहिए और किस तरह मूल्यांकन को रचनात्मक, अर्थपूर्ण और तनावमुक्त बनाया जा सकता है जिससे बच्चों में सीखने की प्रक्रिया प्रबल हो सके।

## 3.4 कला शिक्षा में मूल्यांकन का महत्व

हम सभी बच्चों के बारे में चिंतित है और इसलिए हम सबका सरोकार इस बात से है कि प्रत्येक विद्यालय का परिवेश ऐसा हो जहाँ हर बच्चे को सीखने के भर पुर अवसर मिलें। बच्चों की शिक्षा से जुडे सभी लोग, विशेषकर शिक्षक इस संबंध में अपने आपको बहुत ही जिम्मेदार मानते हैं। ऐसा उनकी इच्छाओं से जाहिर होता है कि वे सभी बच्चों को उनके गुण और रूचियों के विकास में मदद के लिए तत्पर है। वे उन्हें विश्वास के साथ अपनी जिन्दगी का सामना करने के लिए तैयार करना चाहते हैं। शिक्षकों का काफी समय इसी बात का पता लगाने में निकल जाता है कि बच्चे स्कूल में कैसा कर पा रहे हैं। बहुत से शिक्षक आकलन को अपने स्कूल की रोज़मर्रा की महत्वपूर्ण गतिविधि के रूप में देखते हैं।

शिक्षक इसके लिये बहुत से कारण गिनाते हैं – एक महत्वपूर्ण कारण यह जानना है कि बच्चों को जो कुछ भी सीखना है, क्या वे सीख पा रहे हैं? दूसरी वजह एक अवधि विशेष में बच्चों को प्रगति के बारे में जानकारी प्राप्त करना है। तीसरी वजह, जिसको सिर्फ शिक्षक ही नहीं, बल्कि हम सभी बहुत महत्वपूर्ण मानते हैं, कि बच्चे की भिन्न–भिन्न विषयों/क्षेत्रों में क्या उपलब्धियाँ रही। ऐसा शायद इसलिए कि बच्चों को अच्छी क्वालिटी (गुणवत्ता) वाली शिक्षा देना चाहते है और महसूस करते है कि ऐसा तभी संभव हो सकता है जब टेस्ट और परीक्षाओं के जरिए पढाए गए विषयों में बच्चों की उपलब्धियों का मूल्यांकन किया जाए। परीक्षणों (टेस्टों) का अपना एक उददेश्य है पर यदि हम वास्तव में बच्चों को बेहतर तरीके से सीखने में मदद करना चाहते हैं तो हमें इस बात को खास तौर से समझने की जरूरत है कि जाँच/परीक्षाओं में बच्चे द्वारा प्राप्त किए गए अंक और ग्रेड बच्चों की प्रगति या सीखने के बारे में क्या कुछ विशेष बता पाते हैं। इसके अलावा आकलन या मूल्यांकन के महत्व को निम्न बिन्दुओं से जाना जा सकता हैं :–

- बच्चों के व्यक्तिगत और विशेष जरूरतों को पहचानने मे।
- उपर्युक्त तरिकों के आधार पर अध्यापन और सीखने की स्थितियों की योजना बनाने मे।
- कोई बच्चा क्या कर सकता है और क्या नहीं, उसकी किस चीज में रूचि है, वह क्या करना चाहता है और क्या नहीं, इन सबके प्रति समझ बनाने में ।
- बच्चों को कुछ प्राप्त कर पाने, पूर्णता की भावना के विकास के लिए प्रोत्साहित करने में,
- बच्चे के प्रगति के प्रमाण तय (कमजोर पक्ष और मजबूत पक्ष का पता करना) कर पाने में और इन सूचनाओं को अभिभावकों और दूसरों तक सकारात्मक रूप से संप्रेषित कर पाने में,
- बच्चों के मूल्यांकन के प्रति व्याप्त भय को दूर करने और उन्हें स्व–मूल्यांकन के लिए प्रोत्साहित करने में,
- प्रत्येक बच्चे के सीखने और विकास में मदद करने तथा सुधार की संभावनाएं खोजने में।

## 3.5 कला शिक्षा में मूल्यांकन

जैसा कि पहले भी चर्चा की गई है, कला से तात्पर्य केवल उस रचना से नहीं है, बल्कि हर उस प्रक्रिया से है जिससे बच्चा किसी भी कला के निर्माण की प्रक्रिया से गुज़रता हैं। हमने पढा कि बच्चा कला को अपने अनुभवों से निर्मित संदर्भ में ग्रहण करता है। जीवन के हर पड़ाव पर बच्चे की कला के प्रति रुचि बदलती रहती है। बच्चे किस तरह कला को अभिव्यक्ति के माध्यम के रुप में प्रयोग करते हैं– यह जानना भी ज़रूरी है।एक ही उम्र के कई बच्चों का अनुभव भी एक दूसरे से भिन्न होंगे जो उनकी कलात्मक अभिव्यक्ति में दिखाई देगा। प्रत्येक बच्चों में दुनिया को देखने का एक अपना नज़रिया होता है। कक्षा में इस नज़रिए पर ग़ौर करने की और क़द्र करने की ज़रूरत है।

अब हर बच्चे की व्यक्तिगत भिन्नताओं व उसके कला के साथ अनुभव में भिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए, मूल्यांकन पद्धति को उन सभी उपकरणों से लैस होना होगा जो सभी दृष्टिकोणों से बच्चे की कला को समझ सके।

आंकलन की प्रक्रिया को अपनाते हुए निम्नलिखित बातों को दिमाग में रखा जाना चाहिए–

| प्राथमिक | उच्च प्राथमिक |
|---|---|
| ▪ अवलोकन करना सीखना<br>▪ सहज (spontaneity) और मुक्त अभिव्यक्ति<br>▪ भिन्न–भिन्न तरह की गतिविधियों में हिस्सा लेने के लिए रुचि दिखाना<br>▪ सामूहिक कार्य<br>▪ प्रत्येक बच्चे की भागीदारी | ▪ छात्रों की भागीदारी<br>▪ सामाजिक अंतःक्रिया<br>▪ कला और डिज़ाइन के मूलभूत तत्व व सिद्धान्त (principles) की समझ व उनके प्रति संवेदनशीलता का विकास<br>▪ जिस माध्यम का प्रयोग किया हो, उसमें महारत<br>▪ अलग–अलग माध्यमों में प्रयोग |

किसी एक मूल्यांकन पद्धति के बारे में चर्चा करने से पहले हम जिन मापदण्डों की नींव रखी जा सके। वे इस प्रकार हैं–

### 3.5.1 मूल्यांकन बच्चे के लिए न होकर, शिक्षक के लिए है

मूल्यांकन बच्चे के लिए नहीं है, बल्कि शिक्षक के लिए है। इससे शिक्षकों को इन बातों पर समझ बनाने में मदद होती है कि बच्चों के सीखने की प्रक्रिया क्या होती है। बच्चे को क्या चुनौतीपूर्ण लग रहा है। बच्चे कितना सीख पाये हैं। शिक्षण योजना में किस तरह की सुधार की आवश्यकता है, विभिन्न स्तर के बच्चों को किस तरह से सीखाया जाए, बच्चों के रूचि–अरूचि का पता लगाना, बच्चों के कल्पनात्मक क्षमता, सृजनात्मक क्षमता, अभिनय क्षमता, रचनात्मक क्षमता आदि विभिन्न पहलुओ का पता लगाने के लिए शिक्षक को बच्चों का मूल्यांकन करना पड़ता है।

### 3.5.2 कोई परीक्षा नहीं:–

मूल्यांकन पद्धति का तात्पर्य परीक्षा से नहीं है। परीक्षा का अर्थ है कि बच्चों को मजबूरन किसी विषय या थीम पर सीमित समय में प्रदर्शन करने को कहना। एक सार्थक मूल्यांकन के लिए इसकी ज़रूरत नहीं है। मूल्यांकन के उपकरण ऐसे होने चाहिए जो बच्चों के सीखने के अनुभवों को समग्रता में जाँच सकें, वह भी स्वच्छन्द और सीखन–सिखाने लायक (Conducive) वातावरण में।

### 3.5.3 प्रक्रिया आधारित/प्रक्रिया केंद्रित–

जैसा कि पहले भी कहा गया है, मूल्यांकन रचना का नहीं, रचना करने की प्रक्रिया का होना चाहिए।

सही मायने में बच्चे का अधिगम उसके कला से अंतक्रिया के दौरान अनुभवों, कुछ नया रचने का प्रयत्न, चुनौतियों से साक्षात्कार और फिर उनका हल ढूँढने में है, न कि अन्त में प्राप्त होने वाली रचना में। सृजन ही कला का केन्द्र नहीं है, बल्कि दुनिया की तरफ एक सृजनात्मक और कलात्मक दृष्टिकोण विकसित करना है।

### 3.5.4 मूल्यांकन के पैमाने–

मूल्यांकन विभिन्न पैमानों पर बच्चों में विकास को जाँचता है। ये पैमाने वे कौशल हो सकते हैं जिन पर वह गतिविधि आधारित है। इस मापदण्ड का आधार पिछला बिन्दु है जहाँ इस बात पर जोर दिया गया कि मूल्यांकन प्रक्रिया का होना चाहिए, न कि रचना का। अब मूल्यांकन के लिए सम्पूर्ण प्रक्रिया को चरणों में जोड़ना होगा। इससे उन समस्याओं के बारे में समझ बनेगी जिनका बच्चों से अक्सर साक्षात्कार होता है और आगे के लिए योजना बनाने में भी मदद होगी।

### 3.5.5 प्रतिस्पर्धा केन्द्रित नहीं है–

मूल्यांकन का उद्देश्य प्रतिस्पर्धा नहीं है। जैसा कि हमने पहले भी चर्चा किया हैं कि हर बच्चा अपने आप में विशेष/विशिष्ट होता है। इसलिए एक की तुलना दूसरे से करना निर्रथक है। हर बच्चा अनुभवों की एक कड़ी से गुज़र रहा होता है जिससे उसका नज़रिया विकसित होता है। इस बात का ख्याल मूल्यांकन करते दौरान होना ज़रूरी है। मूल्यांकन कुछ ऐसा होना चाहिए जो बच्चे के विकास को उसी के विशिष्ट परिप्रेक्ष्य में माप सके। हर बच्चा अपनी रफ्तार से चीज़ों को ग्रहण करता है व सीखता है। मूल्यांकन के प्रति ऐसी समझ बच्चे को अपनी तरह व अपनी गति से सीखने का अवसर देगी।

### 3.5.6 सतत् और निरंतर हो–

आंकलन का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है कि मूल्यांकन सतत् हो व निरंतरता में हो। मूल्यांकन 'वन टाइम' परीक्षा न होकर उस पूरे समय का रिकॉर्ड हो जब बच्चा नई चुनौतियों से जूझता है, प्रयास करता है और इस दौरान कई छोटी–बड़ी मूर्त–अमूर्त उपलब्धियाँ पाता है। इन सब के अलावा बच्चा हर समय कुछ न कुछ सीख रहा होता है उसका अवलोकन नियमित रूप से करना उसका रिकार्ड रखना और आवश्यकतानुसार प्रतिपूष्टि देना। यह कार्य नियमित (प्रत्येक दिन) होना चाहिए जिससे बच्चे के प्रगति के स्तर के बारे में आसानी से पता लगाया जा सकता हैं।

### 3.5.7 साथी का मूल्यांकन–

स्व–मूल्यांकनः– कोई भी मूल्यांकन पद्धति बिना स्व–मूल्यांकन व साथियों के मूल्यांकन के बिना अधूरी है। यहाँ एक वाज़िब सवाल उठता है कि उसी उम्र के और उसी संज्ञानात्मक स्तर के बच्चे कैसे अपनी सह–पाठियों का मूल्यांकन कर सकेंगे। इसलिए, यहाँ यह समझने की ज़रूरत है कि 'साथी का मूल्यांकन' की अहमियत क्या है। सबसे पहले तो यह शिक्षक को यह समझने का अवसर देता है कि

कोई बच्चा दूसरे बच्चे को, कई मायने में, हमसे बेहतर समझता है और इस नज़रिए से वो उसे सकारात्मक और निर्माणात्मक प्रतिक्रिया देगा। इसके अलावा, इस अभ्यास से कक्षा में सहयोग–आधारित शैक्षिक वातावरण बनाने में मदद मिलेगी। इससे फिर साथी–समूह में अध्ययन को प्रोत्साहन मिलेगा।

स्व–मूल्यांकन तो किसी भी कारगर शिक्षण प्रक्रिया के लिए ज़रूरी है। सीखने वाले के लिए अपने सीखने के बारे में जागरूक होने से मदद मिलती है। इससे बच्चा जीवन भर अपने सीखने का स्वयं ही मूल्यांकन कर पाने में सक्षम हो जाता है। स्व–मूल्यांकन से संचालन व निर्देशन के माध्यम से बच्चे खुद को और अपनी परिस्थितियों को बेहतर समझ पाते हैं। कला शिक्षण में तो इसकी अहमियत जितनी समझी जाए कम है। क्योंकि कला और सौंदर्य के प्रति हर किसी का नज़रिया व्यक्तिगत होता है। अभिव्यक्ति और उसकी समझ भी भिन्न होती है। इसीलिए बच्चों के नज़रिये की समझ होना बहुत ज़रूरी है।

### 3.5.8 प्रतिक्रिया व योजना–

प्रतिक्रिया को जब तक आगे की योजना में समायोजित नहीं किया जाता, तब तक मूल्यांकन की प्रक्रिया अधूरी है। मूल्यांकन का उद्देश्य सीखने को परखना नहीं बल्कि सीखने को प्रोत्साहित करना है। ऐसा कारगर रूप से करने के लिए बच्चों को मूल्यांकन के आधार पर प्रतिक्रिया देना बहुत ज़रूरी है। इस तरह बच्चे (learner) और शिक्षक (mentor) सीखने के बेहतर अवसर व माध्यम तलाश सकते हैं। साथियों, सह–पाठियों की प्रतिक्रिया भी इस प्रक्रिया में शामिल हैं। इस मूल्यांकन से निकलने वाले निष्कर्ष योजना के कार्य को ठोस आधार देते हैं।

**गतिविधि**

आप अपने विद्यालय के अध्यापक व अध्यापिकाओं से निम्नलिखित प्रश्नों पर चर्चा करें :

- कला शिक्षा में मूल्यांकन क्यों किया जाना चाहिए? स्पष्ट कीजिए।
- कला शिक्षा में मूल्यांकन के विभिन्न मापदण्डों को जानना क्यों आवश्यक हैं? क्या इसके बिना भी मूल्यांकन किया जा सकता हैं? अपना मत स्पष्ट कीजिए।
- मूल्यांकन व परीक्षा में आपके हिसाब से क्या अन्तर हैं?

## 3.6 मूल्यांकन संबंधी सूचनाओं का इस्तेमाल

मूल्यांकन संबंधी सूचनाओं का इस्तेमाल निम्न तरिके से किया जा सकता हैः–

### 3.6.1 रिपोर्टिंग और प्रतिपुष्टि (Feedback) के लिए :–

सीखने की प्रक्रिया के दौरान जब मूल्यांकन साथ–साथ चल रहा होता है तब शिक्षकों के पास बच्चों के बारे में बहुत सी सूचनाए जुट जाती हैं। सूचनाए दर्ज कर लेने एवं उनका विश्लेषण कर लेने के बाद यह जान लेना जरूरी होगा कि इनका क्या किया जाए? इस बात से आप सहमत होंगे कि सामान्यतः सभी विधालयों में बच्चों के सीखने और प्रगति के मूल्यांकन से जुडी सूचनाएं एक रिपोर्ट कार्ड के माध्यम से दी जाती है। ये रिपोर्ट कार्ड एक प्रकार से भिन्न–भिन्न विषयों में बच्चों के प्रदर्शन और निष्पादन की एक तस्वीर विधालयी सत्र में आयोजित टेस्टों, परीक्षाओं में प्राप्त अंकों और ग्रेडों के आधार पर प्रस्तुत करते हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि शिक्षकों द्वारा विघार्थियों का जो मूल्यांकन किया जाता है और इस संबंध में वे जो भी रिकार्ड रखते हैं, वे सभी शिक्षको को मदद करते हैः–

- यह समझने में कि बच्चे किस तरह और कितना सीख पा रहे हैं।
- स्वयं की शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को उन्नत करने में उपयोगी।
- प्रत्येक बच्चे की सीखने की प्रक्रिया को समुन्नत करने के उददेश्य से उन्हें और अधिक अर्थपूर्ण अवसर तथा अनुभव प्रदान करने की दिशा प्रदान करते हैं।

### 3.6.2 शिक्षक के लिएः–

शिक्षक की प्रतिबिंबात्मक टिप्पणी प्रगति पत्रक बनाने में मदद करेगी। प्रगति पत्रक एक निश्चित अवधि में बच्चे की प्रगति से संबंधित स्पष्ट तस्वीर प्रदान करने में सहायक सिद्ध होगा। इसी स्थिति में शिक्षक द्वारा बच्चों के सीखने की दिशा को अर्थपूर्ण बनाया जा सकता है और समझ तथा कौशल प्राप्ति के निम्न स्तर के उच्च एवं जटिल स्तर की ओर पहुंचाया जा सकता है। इस तरह से हमें इस बात की समझ बनाने में भी मदद मिलती है कि बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में क्या–क्या कठिनाइयां आ रही है और इन कठिनाइयों तथा अन्तरों का समाधान किस तरह से ढूंढा जा सकता है। प्रतिपुष्टि ही वह माध्यम है जिसके जरिए शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में परिवर्तन लाया जा सकता है।

प्रतिपुष्टि के संबंध में महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि शिक्षक द्वारा दी जाने वाली रिपोर्ट में क्या–क्या होना चाहिए। बच्चे द्वारा की गई प्रगति का उल्लेख निम्न तरिके से किया जा सकता हैं :–

- विषय क्षेत्रों में ए, बी, सी ग्रड देना। ये ग्रेड बच्चे के अधिगम तथा प्रदर्शन के उस विस्तार की ओर घ्यान दिलाएंगे जो तीन स्तरीय सूची द्वारा दर्शाया जाता हैं।
- बच्चे द्वारा किए गए कामों का संग्रह और उनका प्रदर्शन बच्चे की सीखने के प्रति समझ बनाने में मददगार होगा।
- बच्चे के व्यक्तित्व के भिन्न–भिन्न पहलुओं पर ध्यान केंद्रित किया जा सकता हैं।
- ग्रेड के साथ–साथ बच्चे के सीखने के तरीकों के बारे में गुणात्मक बातें कही जा सकती हैं।
- बच्चे द्वारा किए गए कामों का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता हैं।
- बच्चे के सीखने की प्रक्रिया के मजबुत पक्ष को और अधिक उभारकर तथा उन पहलुओं पर विशेष ध्यान देकर जहां पुनर्बलन की आवश्यकता है। आदि

### 3.6.3 बच्चों को संप्रेषित करनाः–

अध्यापन में जब बच्चे बहुत सी गतिविधियों में संलग्न होते हैं तब शिक्षक अनौपचारिक रूप से प्रतिपुष्टि देते रहते हैं। बच्चे शिक्षकों, दूसरे बच्चों या समूहदार/जोडीदार की कार्य प्रणाली का अवलोकन करते समय स्वयं की गलतियां भी दूर कर लेते है और समुन्नत भी करते रहते हैं। सीखने के संदर्भ में स्थिति समस्याजनक तब हो जाती है जब रिपोर्ट केवल यह दर्शाती है कि बच्चे सही तरह से कर नहीं पाते, यानी कि उनकी अक्षमताओं और असफलताओं की ही व्याख्या की जाती है। इस तरह की रिपोर्ट बच्चों को हतोत्साहित/निरूत्साहित करती है। शिक्षकों को निम्न तरह की व्यख्या रिपोर्ट कार्डों में करनी चाहिएः–

- प्रत्येक बच्चे से उसके कार्यो (रचना) के बारे में बातचीत करें, कौन–कौन सा काम अच्छी तरह से किया गया है, कौन–सा नहीं और कहाँ–कहाँ सुधार की जरूरत है।
- बच्चे को अपना–अपना पोर्टफोलियों देखने तथा वर्तमान में ( हाल ही में ) किए गए कार्यो (रचना) की तुलना पुराने कार्यो (रचना) से करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।

- बच्चे व शिक्षक दोनों मिलकर इस बात की पहचान करें कि बच्चों को किस तरह की मदद की आवश्यकता हैं।
- काम करने की प्रक्रिया के दौरान या बाद में भी सकारात्मक व रचनात्मक टिप्पणियाँ ही देनी चाहिए।

### 3.6.4 अभिभावकों के साथ बाँटनाः–

सामान्यतः सभी अभिभावक को यह जानने में रूचि रहती है कि उनका बच्चा विघालय में कैसा कर रहा है, उसने क्या–क्या सीखा है, दूसरे बच्चे किस तरह का प्रदर्शन कर रहे हैं एक निश्चित समयावधि के भीतर उनके बच्चे की क्या प्रगति हुई है। आमतौर पर शिक्षक यह महसूस करते है कि उन्होंने अभिभावकों को उनके बच्चों की प्रगति के बारे में भली–भाँति बता दिया है '' अच्छा कर सकता है'' , ''अच्छा'', ''खराब'', ''अधिक प्रयास करने की जरूरत है'', किसी भी अभिभावक के लिए इन टिप्पणियों की क्या सार्थकता हैं? क्या इस तरह की टिप्पणियाँ किसी तरह की स्पष्ट सूचना प्रदान कर सकती हैं कि उनका बच्चा क्या कर सकता है और क्या सीख चुका है। अभिभावकों के लिए टिप्पणियाँ स्पष्ट व सरल भाषा में कुछ निम्न प्रकार से दिया जा सकता हैंः–

- बच्चे क्या–क्या कर सकते हैं, क्या करना चाह रहे हैं और क्या करने में उसे कठिनाई होती है।
- बच्चे को क्या–क्या करना पसंद है और क्या नहीं।
- बच्चों द्वारा किए गए कामों के नमूने, गुणात्मक कथन, मात्रात्मक प्रतिपुष्टि के साथ प्रस्तुत किए जा सकते हैं।
- बच्चों ने किस तरह से सीखा (प्रक्रिया) और सीखने में कहाँ–कहाँ कठिनाई का सामना किया।
- बच्चों के कार्यों की चर्चा अभिभावकों से करना जो उनकी सफलता और सुधार के क्षेत्रों की दिखाने में मदद कर सके।
- अभिभावकों के साथ चर्चा करना कि बच्चों की किस तरह से मदद कर सकते है और घर पर उन्होंने किस तरह का अवलोकन किया है।
- बच्चे की उन्नति/प्रगति को ग्राफ (लेखा चित्र) के माध्यम से प्रस्तुत कर सकते है, जिसे समझना बच्चों व अभिभावकों के लिए सरल होगा।

### 3.6.5 शिक्षक के कार्यों की प्रतिपुष्टिः–

मुल्यांकन शिक्षक के द्वारा किए गए कार्यों का प्रतिपुष्टि (feedback) भी पेश करता है तथा इससे शिक्षक अपने कार्यों का मुल्यांकन निम्न सवाल के द्वारा कर सकते है–

- क्या मेरे बच्चे पूरी तरह से गतिविधियों में संलग्न है और ठीक तरह से सीख पा रहे हैं? यदि नहीं तो वे किस स्तर पर हैं?
- क्या मैं बच्चों की भिन्न–भिन्न जरूरतों को समझ सकता हूँ? यदि हाँ तो उन जरूरतों की समझ के आधार पर मैं क्या करने वाला हूँ?
- क्या कुछ ऐसे बच्चे है जो पहले स्तर तक पहुँचने में कठिनाई अनुभव कर रहे हैं? उन्हें प्रेरित तथा उत्साहित करने के लिए मुझे क्या करना चाहिए?
- बच्चों को एक स्तर से अगले स्तर तक ले जाने के लिए मुझे अपनी अध्यापन प्रक्रिया को उन्नत करने के लिए क्या करना चहिए?

- मैं बच्चों को स्व–आकलन के लिए कैसे प्रेरित कर सकता हूँ?
- मुझे किन–किन क्षेत्रों में कठिनाइयाँ आती है– (बच्चों का समूह बनाने में, बच्चों की उम्र और स्तर के अनुसार गतिविधियों का चयन करने में, सामग्री की कमी व अनुप्युक्तता पर, आदि)
- मुझे और किस तरह की सहायता की जरूरत है? मुझे कौन इस तरह की मदद दे सकता/सकती है?
- बेहतर अध्यापन अधिगम अभ्यासों के लिए और क्या–क्या प्रयास किए जा सकते हैं?

## 3.7 कला में मूल्यांकन के विभिन्न उपागम एवं तकनीक

कला में मूल्यांकन के लिए निम्नलिखित उपागम एवं तकनीक का उपयोग किया जा सकता हैं:–

3.7.1 **अवलोकन** (Observation):– बच्चों के बारे में जानकारी प्राकृतिक परिवेश में इकठ्ठी करनी चाहिए। शिक्षार्थी के बारे में कुछ सूचनाएं शिक्षक के पढ़ाने के दौरान किए गए अवलोकन के आधार पर प्राप्त की जा सकती है। कुछ सूचनाएं विघार्थियों के पूर्व नियोजित और अर्थपूर्ण अवलोकन पर भी आधारित हो सकती हैं। अवलोकन, समय की अवधि विशेष में भिन्न–भिन्न गतिविधियों और परिवेशों में किया जाना चाहिए। अवलोकन निम्नलिखित चार तरीकों से किया जा सकता हैं–

- **सीधे/प्रत्यक्ष अवलोकन**– जब बच्चे कार्य कर रहे हो तब।
- **अप्रत्यक्ष अवलोकन**– इस तरह का अवलोकन बच्चों के द्वारा किये गए कार्यों के प्रपत्र जैसे पोर्टफोलियों, प्रदत्तकार्य, परियोजना कार्य आदि के द्वारा किया जा सकता हैं।
- **अनौपचारिक अवलोकन–** इस तरह का अवलोकन जब बच्चे कार्य कर रहे होते है तो बच्चों से बातचीत कर सकते है कि कैसे वे अपनी समझ को प्रदर्शित करेंगें। इस तरह की बातचीत में दूसरे बच्चे भी भाग लेते है इससे शिक्षक को प्रत्येक बच्चे का व्यक्तिगत अवलोकन करने का मौका मिलता है।
- **औपचारिक अवलोकन–** औपचारिक अवलोकन क्षमता आधारित होता है जिसमें मिट्टी से कुछ बनाना, लकड़ी से कुछ बनाना, अनुपयोगी वस्तुओ से कोई सामग्री बनाना आदि। इसमें प्रक्रिया व उत्पाद दोनों का अवलोकन किया जा सकता हैं।

3.7.2 **प्रदत्तकार्य** (Assignments):– कक्षा कार्य तथा गृहकार्य के रूप में विषय–वस्तु/प्रकरण (थीम) आधारित कार्य करवाए जाने चाहिए। यह खुले अंत वाले (Open Ended) (विकल्प सहित) या संरचनात्मक भी हो सकते है। पाठ्यपुस्तकों से बाहर के प्रसंगों पर भी आधारित हो सकते हैं। बहुत अधिक गृहकार्य या कक्षा कार्य नही दिया जाना चाहिए जो कि आजकल बहुत सामान्य है और प्रचलन में है। पदत्त कार्यों की प्रकृति इस तरह की होनी चाहिए कि विघार्थी उन्हें स्वयं कर सकें।

3.7.3 **परियोजनाएँ** (Projects) :– एक सत्र में बहुत–सी परियोजनाएँ करवाई जा सकती है, आमतौर पर इन परियोजनाओं के माध्यम से आँकडो का संग्रह और विश्लेषण किया जाता है, थीम पर आधारित सीखने की प्रक्रिया में परियोजनाएँ महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। इनकी प्रकृति और कठिनाई कुछ इस प्रकार होनी चाहिए कि विघार्थी इसे स्वयं कर सकें। परियोजनाओं में प्रयुक्त समग्री विद्यालय, आस–पडोस या घर से ही ली जानी चाहिए, सामग्री के लिए अभिभावकों पर अतिरिक्त आर्थिक भार नहीं डालना चाहिए।

3.7.4 **पोर्टफोलियो** (Portfolio) **(विधार्थी फाइल):–** समय की एक निश्चित अवधि में विधार्थी द्वारा किए गए कार्यों का संग्रह, ये रोज़मर्रा के काम भी हो सकते हैं या फिर शिक्षार्थी के कार्य के उत्कृष्ट नमूने भी हो सकते हैं। इसमें सभी तरह के कागज/विषय वस्तुओं को शामिल करने की जरूरत नहीं है अन्यथा प्रबन्ध करना मुश्किल हो जाएगा। पोर्टफोलियों में बच्चें द्वारा किए कार्य को रखने के साथ उस पर प्रतिबिंबात्मक टिप्पणियाँ कर देनी चाहिए। जिससे बाद में कभी प्रतिक्रियाओं के संबंध में निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

3.7.5 **चेक लिस्ट** (Checklist) **(जाँच सूची):–** किसी खास व्यवहार/क्रिया के बारे में सुव्यवस्थित तरीके से दर्ज किए गए उल्लेख किसी भी खास पहलू की तरफ ध्यान आकर्षित करने में मदद करते हैं। चेक लिस्ट बनाते समय यदि उसमें टिप्पणी का कॉलम/स्थान रखा जाए तो वह सूचनाओं को व्यापक रूप दे सकता है। इसका उपयोग आकलन के दूसरी विधियों के साथ सहायक के रूप में किया जा सकता हैं।

3.7.6 **रेटिंग स्केल** (Rating Scales) **(श्रेणीबद्ध पैमाना):–** इसका इस्तेमाल विधार्थी के काम की गुणवता दर्ज करने और निर्धारित मानदण्डों के आधार पर गुणवता तय करने के लिए किया जा सकता हैं। समग्र रूप से तैयार रेटिंग स्केल एक अकेले काम के एक अंश का पूरा आकलन कर सकता है। अवलोकन करते समय संवेदनशील बने, समय की भिन्न–भिन्न अवधियों और अलग–अलग गतिविधियों तथा परिवेश में अवलोकन किया जाना चाहिए ताकि विकास क विभिन्न पहलुओं का आकलन किया जा सकें। इस दौरान बच्चों के अनुभव को भी नोट किया जा सकता है व उपचारात्मक टिप्पणियाँ भी दी जा सकती हैं।

3.7.7 **घटना वृत्तांत व संचयी रिकार्ड** (Anecdotal records) :– इस उपागम का उपयोग बच्चे के जीवन में हुई महत्वपूर्ण घटनाओ, जिनका अवलोकन किया गया हो के वर्णनात्मक रिकार्ड प्रस्तुत करने में किया जा सकता हैं। कक्षा में घटित होन वाली बहुत रूचिकर/मजेदार घटनाओं का वर्णन इसमें किया जा सकता है। इसमें घटनाओं का वर्णन ही किया जाना चाहिए टिप्पणी देने या अपना मत रखने से बचना चाहिए।

3.7.8 **प्रदर्शन** (Display) :– इसका उपयोग बच्चे द्वारा किए गए कार्यों को प्रदर्शित करने के लिए किया जा सकता हैं। कार्यों के प्रदर्शन के लिए उपयुक्त स्थान का चुनाव शिक्षक अपनी सुविधानुसार कर सकते है जहाँ पर दृश्य कला का प्रदर्शन आसानी से हो सके। प्रदर्शन कला के प्रदर्शन के लिए विद्यालय का कोई भी उपर्युक्त जगह का चुनाव किया जा सकता है। इससे बच्चे को कला का प्रदर्शन करने का मौका

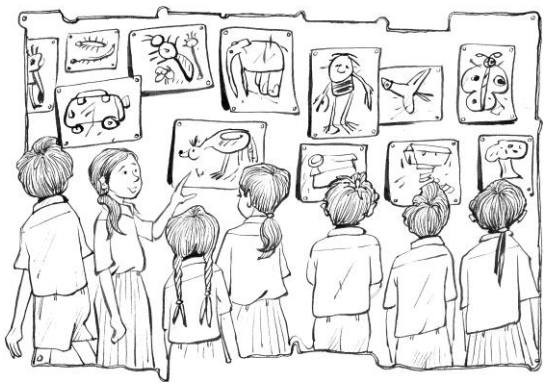

मिलेगा और शिक्षक इस प्रदर्शन के आधार पर मूल्यांकन कर सकतें हैं।

3.7.9 **साक्षात्कार** (Interview) :– बच्चे के साथ साक्षात्कार करने से शिक्षक बच्चे की समझ, अनुभव, व्यवहार, रूचि, प्रेरणा और सोच की प्रक्रिया को समझ सकते हैं। बच्चे का साक्षात्कार मूल्यांकन के विभिन्न उपागम/तकनीक का उपयोग करते समय किया जा सकता हैं जैसेः– अवलोकन करते समय, रेटिंग स्केल भरते समय, जाँच सूची का उपयोग करते समय और स्व–मूल्यांकन करते समय। छोटे बच्चों के साथ साक्षात्कार आसान और सरल तरीके से किया जा सकता है जिसमे कठिनाई स्तर कम हो और जो इन्हें आसानी से समझ आ सकें।

**गतिविधि**

अपने अध्ययन केन्द्र पर निम्नलिखित प्रश्नों पर चर्चा करें :

- मूल्यांकन से प्राप्त सूचना शिक्षक के लिए उपयोगी होता है तो वह इसका उपयोग अपने कार्यों में किस प्रकार कर सकता हैं?
- कला शिक्षा में मूल्यांकन तकनीक की कितनी उपयोगिता हैं? व्याख्या कीजिए।
- कला विधा के किसी एक विषय पर अपने कक्षा में किसी पाँच बच्चे का एक अवलोकन रिपोर्ट तैयार कीजिए।
- कला शिक्षा मूल्यांकन में प्रदर्शन तकनीक का उपयोग किस प्रकार किया जा सकता हैं? अपने अनूभव के आधार पर एक लेख तैयार कीजिए।

## 3.8 कला में संकेतक आधारित मूल्यांकन

बच्चे जब कला में भाग ले रहे होते हैं तो उसमें उनके अनेक अनुभव शामिल होते हैं, इसलिए कला में उनके आकलन में समग्रता होनी चाहिए। इसके लिए बच्चे द्वारा बनाई या तैयार की गई कला की प्रक्रिया और उत्पाद का अन्तिम रूप में दोनों का आकलन करना आवश्यक है तभी बच्चे के सीखने के बारे में कोई राय बनाई जा सकती है। प्रक्रिया के अंतर्गत हम कई तरह का अवलोकन कर सकते है जैसे बच्चे की खोजी प्रवृति, किसी काम को जारी रखने की कोशिश, अपने काम को आत्मसात करने का गुण, अपनी कला के माध्यम से अपने विचार और भावना व्यक्त कर पाना, अपने और दूसरों के प्रति जागरूकता होना, सृजनशीलता का परिचय देना, अपने और दूसरे के अनुभवों को विश्लेषित करना और कलात्मक उत्पाद या प्रस्तुतियों के गुण–दोष बता पाना, कला का आकलन मुख्यतः प्रक्रिया आधारित है इसलिए बच्चे द्वारा किए जा रहे अवलोकन, अन्वेषण, सहभागिता और अभिव्यक्ति निर्णायक तत्व बन जाते हैं। कोई गाना याद हो जाना या कोई नाटक तैयार करके दिखना आकलन का आधार नहीं हो सकता क्योंकि उसमें सीखने के कई सोपान अनदेखे रह जाते हैं।

यहाँ कला में आकलन के लिए कुछ संकेतक दिए जा रहे हैं और साथ ही उनके बढ़ते स्तर भी दिये जा रहे हैं। ये संकेतक सभी प्रकार की कलाओं के लिए समान रूप से प्रयोग नहीं किये जा सकते है। अलग–अलग संकेतकों का अलग–अलग गतिविधि या कक्षा में प्रयोग करना ज्यादा व्यवहारिक होगा। एक ही कक्षा या अवधि में आवश्यक नहीं है कि कोई बच्चा तीनों स्तरों में हो यह तीनों स्तर एवं संकेंतक निम्न टेबल में दर्शाए गए हैंः–

| संकेतक | स्तर एक | स्तर दो | स्तर तीन |
|---|---|---|---|
| सहभागिता (Engage) | व्यस्त लेकिन अधिक | पूरे ध्यान से | आनंदपूर्वक |

| | | | |
|---|---|---|---|
| | ध्यान नहीं | | |
| समझ (Perceive) | ध्यान लगाना | मगन हो जाना | बारीकियों पर ध्यान देना |
| अभिव्यक्ति (Express) | अनुकरणात्मक | प्रयोगात्मक | अनुठा<br>अनुपम/सृजनात्मक<br>मौलिकता |
| चिंतन,विचार निर्माण (Reflect\To think deeply) | वर्णनात्मक, व्याख्यात्मक | विचारशील | पुनर्रचनात्मक |
| प्रतिक्रिया (Response) | उदासीन, निरूत्सुक | सम्बध, रूचि रखने वाला | विश्लषणात्मक |
| मूल्य (Value) | मान्य | मूल्य का महत्व स्वीकार | समर्पित |

दिए गए संकेतक शिक्षक की कई तरह से मदद कर सकते हैं जैसे–

- सीखने की निरन्तरता को ध्यान में रखते हुए बच्चों के सीखने की बेहतर समझ और उसे केन्द्र में रखना।
- पर्यवेक्षण, अधिगम और प्रगति को रिपोर्ट करने के लिए एक रूपरेखा प्रदान करते हैं।
- अभिभावकों, बच्चों और कई दूसरों के लिए बच्चों की प्रगति को आसान तरीके से समझने के लिए संदर्भ बिंदु की तरह कार्य करते हैं।

इन संकेतकों के आधार पर गुणात्मक टिप्पणियाँ भी तैयार की जा सकती हैं– बच्चों द्वारा किए गए कार्य के प्रति यह कितना उपयुक्त है– स्वीकार्य, महत्वपूर्ण और रूचिकर। बहुधा यह देखा जाता है कि शिक्षार्थी को 'अ' या 'ब' के द्वारा उसके उत्तर/प्रतिक्रिया को चिह्नित किया जाता है शिक्षार्थी के साथ किसी भी तरह की अंतःक्रिया किए बगैर।

### 3.8.1 दृश्यकला एवं प्रदर्शन कला में मूल्यांकन के लिए संकेतक का उपयोगः–

प्रत्येक बच्चे में अपने विचारों को व्यक्तिगत अभिव्यक्ति प्रदान करने की कुछ अंतर्निहित योग्यताएं होती है। अतः बच्चे की अभिव्यक्ति को मुख्य निष्कर्ष समझा जाता है। लेकिन इस दृष्टिकोण का जटिल पक्ष यह है कि बच्चों के अनुभव व विचारों की भिन्नता के कारण एक ही विषय पर की गई अभिव्यक्ति में भिन्नता देखने को मिलती है साथ ही शिक्षक की दृष्टि भी अलग–अलग हो सकती हैं जैसे– सौंदर्य बोध, रंग योजना और सृजनशीलता के बारे में प्रत्येक व्यक्ति का दृष्टिकोण अलग–अलग होता हैं इसी प्रकार प्रदर्शन कला में शिक्षक को अलग–अलग शैली या तरीका पसन्द आ सकता हैं जो बच्चे के आकलन को प्रभावित कर सकता है। आकलन में जटिलता तब और बढ़ जाती है जब उसमें परस्पर तुलना करने के लिए भी कोई आधार नहीं होता प्रदर्शन कला के अन्तर्गत भी प्रत्येक बच्चे का अपना तरीका, अपनी पसन्द, आदि की विशेषता होती है। अतः यहाँ हर बच्चे की उनकी सृजनात्मकता का भी विश्लेषण करते हुए उसके समग्र प्रभाव को देखा जाना चाहिए। साथ ही उम्र के आधार पर अवलोकन, ध्यान केन्द्रन, प्रदर्शन एवं प्रस्तुति की क्षमता के साथ उसकी संलग्नता एवं रूचि को भी आकलित किया जाना चाहिए। प्राथमिक स्तर पर बच्चों का कला–कौशल कार्य के दौरान आयु अनुसार स्वभाविक रूप से बढ़ता जाएगा उसको बढ़ाने के प्रयास व उसको जाँचने पर जोर नहीं देना चाहिए नहीं तो कला कार्यों में संलग्न बच्चों का आनन्द गायब हो जाएगा।

विशेष तौर पर कलाओं के संदर्भ में कला प्रक्रिया का अत्यन्त महत्व है। बने हुए चित्र का जितना महत्व है उससे अधिक महत्व चित्र बनाने का है और उस दौरान बच्चों के मनोभाव, मनःस्थिति, अनुभूति, दृष्टिकोण, समझ, उनकी जागरूकता, कौशलों का प्रयोग, विश्लेषण का तरीका, समालोचना आदि तत्व जो कि चित्र बनाने की प्रक्रिया के दौरान ही देखे जा सकते है उनका भी आकलन किया जाना चाहिए। इसी प्रकार प्रदर्शन कला के विभिन्न विधाओं के अन्तर्गत प्रदर्शन करने की प्रक्रिया के दौरान ही उसकी विशेषताओं, गुणवता का आकलन किया जा सकता है या ये कहें कि प्रदर्शन कला का अस्तित्व प्रदर्शन कला की प्रक्रिया के दौरान ही जीवन्त रूप से देखा जा सकता है। बच्चे की मनःस्थिति, मनोभाव, अनुभूति, प्रदर्शन का तरीका, शैली, प्रदर्शन में बौद्धिकता का इस्तेमाल, जागरूकता, कौशल का प्रयोग, सौन्दर्य का सृजन, कला सृजन आदि को प्रक्रिया के दौरान ही देखा जाना चाहिए। यह समझते हुए कि कला की प्रकृति के अनुसार प्रक्रिया के दौरान ही अपनी विशिष्ट एवं जीवन्तता दिखाई देती है। इसलिए कलाओं के मामले में प्रक्रिया के दौरान सतत् अवलोकन, आकलन की दृष्टि से अपेक्षाकृत और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है।

दृश्यकला और प्रदर्शन कला में बच्चे के सीखने के दौरान व उसके द्वारा अभिव्यक्ति के आधार पर अवलोकन करते हुए शिक्षक अधिगम के अन्य कई क्षेत्रों का आकलन भी कर सकते हैं। लेकिन यह उनकी दृष्टि पर निर्भर करेगा कि उनकी दृष्टि कितनी विकसित हुई है। मूल्यांकन के संदर्भ में व्यापक दृष्टि का निर्माण तभी हो सकता है जब शिक्षक लम्बे समय तक कला शिक्षा से जुड़े रहे एवं स्वयं के स्तर पर नियमित रूप से कला सृजन, चिंतन एवं अध्ययन करते रहे।

**दृश्यकला में मूल्यांकन हेतु दो संकेतकों को चुना जा सकता हैः–**

पहला मूल्यांकन संकेतक– सहभागिता

दूसरा मूल्यांकन संकेतक– अभिव्यक्ति

**पहला मूल्यांकन संकेतक– सहभागिता**

सहभागिता को जानने के लिए हमें बच्चे का अवलोकन कार्य के दौरान करना होगा जिसमे देखना होगा कि बच्चा गतिविधि में शारीरिक व मानसिक रूप से जुड़ पा रहा है या नहीं। गतिविधि के दौरान बच्चों के जुड़ाव में सहभागिता के तीन स्तरों (जैसा कि टेबल संख्या–2

में दिया गया हैं) को देखा जा सकता है।

स्तर 1 – व्यस्त लेकिन अधिक ध्यान नहीं

स्तर 2 – पूरे ध्यान से

स्तर 3 – आनंदपूर्वक

आंशिक रूचि से लेकर आनन्द के साथ सहभागिता तक के इस प्रयास को शिक्षक कला कालांश में कार्य के दौरान बच्चों की गतिविधि पर यदि पैनी नजर रखें तो कार्य के सुचारू होने से समाप्त होने तक सहभागिता के उपयुक्त लक्षणों को देखा जा सकता है और अवलोकन के दौरान ही बच्चे की स्थिति को अपनी डायरी/रजिस्टर में समीक्षात्मक टिप्पणी के रूप में लिख सकते हैं।

**दूसरा मूल्यांकन संकेतक– अभिव्यक्ति**

विधालयों में बच्चों द्वारा अभिव्यक्ति अनुकरण से लेकर मौलिकता के मध्य कई चरणों से गुजरती है। अब देखना यह

है कि इस स्तर पर बच्चा स्वतंत्र अभिव्यक्ति के लिए मस्तिष्क में संगृहीत दृश्य कला बिम्बों को नये रूप, विचार के साथ सृजनात्मक अभिव्यक्ति करता है या पिछले कार्य शैली में कुछ नये प्रयोग करते हुए अभिव्यक्ति करता है या फिर दूसरों की कृति से प्रेरित होकर उसे हूबहू बनाने में रूचि रखता हैं। अभिव्यक्ति के विभिन्न स्तरों को घ्यान में रखते हुए मूल्यांकन किया जा सकता है–

स्तर 1 – अनुकरणात्मक
स्तर 2 – प्रयोगात्मक
स्तर 3 – अनुठा अनुपम/सृजनात्मक मौलिकता

पहला तरीका यह है कि कला कालांश के दौरान अवलोकन करते हुए पैनी नजर से अभिव्यक्ति के स्तर को जाना जा सकता है और दूसरा तरीका है कि बच्चों के कार्य पत्रक का पोर्टफोलियो तैयार करना जिसमें दिनांक के हिसाब से कार्यपत्रकों को क्रमबद्ध ढ़ंग से रखा गया हो। जिससे पोर्टफोलियो देखने पर भी बच्चे के कार्य की प्रगति देखी जा सकें। सृजनात्मकता को जाँचने के लिए बच्चों के चित्र पर कार्य के उपरान्त कक्षा में उसी समय बातचीत करते हुए विचार को समझा जा सकता है जिसका कार्य के संधारण के आधार पर पता नहीं लग पाता। इसी प्रकार प्रयोगात्मक अभिव्यक्ति वाले बच्चे के कार्य का पता भी अवलोकन के आधार पर ही लगाया जा सकता है। लेकिन अनुकरणात्मक अभिव्यक्ति का आकलन संधारित कृतियों के आधार पर किया जा सकता है और कार्य के दौरान अवलोकन के आधार पर भी किया जा सकता है।

**प्रदर्शनकला में मूल्यांकन हेतु तीन संकेतकों को चुना जा सकता हैं:–**

पहला मूल्यांकन संकेतक– सहभागिता
दूसरा मूल्यांकन संकेतक– अभिव्यक्ति
तीसरा मूल्यांकन संकेतक– प्रतिक्रिया

**पहला मूल्यांकन संकेतक– सहभागिता**

स्तर 1 – व्यस्त लेकिन अधिक ध्यान नहीं
स्तर 2 – पूरे ध्यान से
स्तर 3 – आनंदपूर्वक

बच्चे की सहभागिता का आकलन कक्षा कक्ष में कार्य करने के दौरान ही देखा जा सकता है। शिक्षक जब कोई गीत/कविता खुद गाकर बच्चों को भी साथ–साथ गाने के लिए कह रहे होंगे और बच्चे गा रहे होंगे, उसी समय बच्चों की उस गीत में सहभागिता को आंका जा सकता है कि बच्चे आनन्द के साथ उस गतिविधि में शामिल होकर भी आनन्द नहीं ले पा रहे हैं या फिर कुछ बच्चों को कम रूचिकर लग रही हैं। शिक्षक उसी समय बच्चों का अवलोकन करते हुए अपनी डायरी में बच्चों के लिए टिप्पणी दर्ज कर सकते हैं। जब संगीत की दूसरी गतिविधि करवाएंगे उस समय भी शिक्षक को यही प्रक्रिया अपनानी होगी। टेप द्वारा भी संगीत सुनाकर बच्चों का अवलोकन किया जा सकता है व उसी समय बच्चे की

सहभागिता को दर्ज किया जा सकता है। अगर कक्षा में बच्चे ज्यादा हैं तो आधे–आधे बच्चों को भी संगीत सुनाकर अथवा गवाकर अवलोकन किया जा सकता हैं।

**दूसरा मूल्यांकन संकेतक– अभिव्यक्ति**

स्तर 1 – अनुकरणात्मक
स्तर 2 – प्रयोगात्मक
स्तर 3 – अनुठा अनुपम/सृजनात्मक मौलिकता

इस बिन्दु का मूल्यांकन करने के लिए शिक्षक को प्रत्येक बच्चे का अलग–अलग सुनना होगा तभी यह जाना जा सकेगा कि सुर, लय, धुन, शब्द, भाव के प्रति बच्चे की सजगता की स्थिति किस तरह की है। बीच में शिक्षक अलग गीत गाकर भी यह जाँच कर सकते है कि बच्चा संगीत के मूल तत्वों के प्रति कितना सजग है या कुछ बदलकर गाने पर भी यह जाना जा सकता हैं।

**तीसरा मूल्यांकन संकेतक– प्रतिक्रिया**

प्रदर्शन कला में मूल्यांकन के इस क्षेत्र के अन्तर्गत सांगीतिक ज्ञान की समझ के क्षेत्र पर काम करना अर्थात् प्रकृति में विविध प्रकार की ध्वनियों/लय को सुनना, उनका विश्लेषण करना एवं उनमें भेद करना है। इसके अलावा संगीत सुनकर अनुभव करना उस पर सोचना, समझने की कोशिश करना, संगीत की सराहना करना एवं सुनकर प्रतिक्रिया करना शामिल है। इस क्षेत्र से सम्बन्धित स्थिति बच्चे में देखने के आधार पर उदाहरण के साथ विस्तार से टिप्पणी लिखी जानी चहिए। प्रतिक्रिया के विभिन्न स्तरों को ध्यान में रखते हुए मूल्यांकन किया जा सकता है:–

स्तर 1 – उदासीन, निरूत्सुक
स्तर 2 – सम्बध, रूचि रखने वाला
स्तर 3 – विश्लेषणात्मक

प्रदर्शन कला की विभिन्न विधाओ (संगीत,नृत्य,रंगमंच) पर शिक्षक बच्चों से विस्तार से बातचीत कर सकते है, उन विधाओं की विशेषताओं को बताते हुए उसके सौन्दर्य पर बच्चे का ध्यान ले जा सकते है ताकि बच्चे सुनना, समझना एवं उसकी सराहना करना सीखें, विभिन्न विधा के ज्ञान की समझ के क्षेत्रों पर भी साथ–साथ काम कर सकते हैं। इस कार्य का आधार विभिन्न विधा को सुनना, देखना, समझना, करना व प्रकृति में विभिन्न विधा के विभिन्न तत्वों के उपर बच्चे का ध्यान ले जाने पर आधारित हो सकता है। इसमें शिक्षक बच्चों से विभिन्न प्रकार के प्रश्न कर सकते है जिससे उनकी प्रतिक्रिया को नोट किया जा सकें।

**अभ्यास प्रश्न–**

- आप अपनी कक्षा के बच्चों का प्रदर्शन कला के किसी एक विधा में मूल्यांकन संकेतकों के आधार पर कीजिए और पता लगाइए की बच्चों के सीखने का स्तर क्या हैं इस पर एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।

## 3.9 पोर्टफोलियो बनाना (प्रायोगिक): महत्व, रख–रखाव

पोर्टफोलियो एक तरह से सभी विधार्थीयों का अलग–अलग व्यक्तिगत फाइल होता है जिसमें एक वर्ष की एक निश्चित अवधि में विधार्थी द्वारा किए गए कार्यों का संग्रह होता है। ये रोज़मर्रा के काम भी हो सकते हैं जैसे बच्चे द्वारा बनाया गया चित्र, कोलाज, वर्कशीट, आर्ट एण्ड क्राफ्ट, ओरीगेमी आदी या फिर इनमें से शिक्षार्थी द्वारा किये गये कार्य के उत्कृष्ट नमूने भी हो सकते हैं। इसमें सभी तरह के

कागज/विषय वस्तुओं को शामिल करने की जरूरत नहीं है अन्यथा प्रबन्ध करना मुश्किल हो जाएगा। पोर्टफोलियों में बच्चें द्वारा किए कार्य को रखने के साथ उस पर प्रतिबिंबात्मक टिप्पणियाँ कर देनी चाहिए। जिससे बाद में कभी प्रतिक्रियाओं के संबंध में निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

पोर्टफोलियो से सभी बच्चों के रिकार्ड आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं और इस प्रकार उपलब्ध रिकार्ड से बच्चे के किसी भी कौशल या ज्ञान के विकसित होने की तस्वीर स्पष्ट होती जाती है। बच्चे इसके माध्यम से अपनी स्वयं की प्रगति और अधिगम के बारे में दूसरों को बताने में सक्षम हो सकते हैं। इसके माध्यम से बच्चे सीखने और अधिगम की प्रक्रिया के सबसे अधिक क्रियाशील सदस्य बन जाते है। पोर्टफोलियो के द्वारा शिक्षक को प्रत्येक बच्चे के अधिगम स्तर का पता आसानी से चल जाता है इस प्रकार यह शिक्षक को बच्चे के मूल्यांकन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

पोर्टफोलियो के लिए विषयवस्तु का चयन करते समय विधार्थियों की भागीदारी को भी प्रोत्साहित करना चाहिए साथ ही साथ विषयवस्तु के चयन के लिए इस्तेमाल किए गए मापदण्डों के बारे में भी सलाह लेनी चाहिए जिससे बच्चों का उस विषयवस्तु के प्रति सकारात्मक सोच विकसित हो सके। बच्चों के अधिगम स्तर के बढने के साथ–साथ पोर्टफोलियो में नयापन लाना चाहिए ताकि बच्चे का उबाऊपन का एहसास ना हों। संदर्भ के लिए विषयवस्तु पर लबलिंग करना, उस पर प्रतिबिम्बात्मक टिप्पणी करना और उस पर संख्या डालना चाहिए ताकि सही रिकार्ड सही समय पर उपलब्ध हो सकें। पोर्टफोलियों के प्रत्येक रिकार्ड पर बच्चे के व्यवहार सम्बन्धी टिप्पणी लिखना चाहिए ताकि मूल्यांकन करते समय कोई कठिनाई ना हों और बच्चे के सम्बन्ध में निष्कर्ष निकाल सके।

**अभ्यास प्रश्न–**

- बच्चों का पोर्टफोलियो बनाना मूल्यांकन के लिए किस प्रकार उपयोगी होता है इस पर अपनी कक्षानुभव के आधार पर एक लेख तैयार कीजिए।

## 3.10 समेकन

बच्चों का आकलन, उन्होंने क्या ज्ञान अर्जित किया– स्कूल में लंबा समय बिताने के बाद होना चाहिए, न कि सालाना आधार पर। इससे बच्चों की सीखने की गति के प्रति अधिक सम्मान का भाव पैदा होगा। न्यूनतम अधिगम स्तर जैसी योजनाओं ने न केवल साल के अंत में आने वाले नतीजों के सख्त पालन पर जोर दिया बल्कि नतीजों को पाठ आधारित और संकीर्ण बना दिया है। पाठ्यचर्या की विशेषताओं का व्याख्या करते समय अगर शिक्षण विधि और आकलन को विभिन्न चरणों में देखा जाए तो पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों व सीखने की सामग्री के साथ जोडा जा सकता हैं तथा शिक्षक बच्चों के विकास की ऐसी योजना बना सकते हैं जो क्रमशः उनकी क्षमताओं, दक्षताओं व अवधारणाओं को पुख्ता बनाएगी।

## 3.11 प्रदत्त कार्य

- अपने विघालय में एक चित्रकला प्रतियोगिता का आयोजन करें तथा बच्चों द्वारा बनायें गये चित्रों की प्रदर्शनी लगायें। बच्चों द्वारा बनायें गये चित्रों का आकलन आप किन–किन मापदण्ड़ों पर करेंगे और कैसे करेंगे एक रिपोर्ट तैयार किजिए।
- किसी एक कला विधा में बच्चों के मूल्यांकन हेतु एक पोर्टफोलियों का निर्माण कीजिए। तथा यह भी बताइये कि इसकी मदद से कला में मूल्यांकन कितना प्रभावी हो सकता हैं।
- आप अपने किसी एक कक्षा में संकेतको के आधार पर प्रदर्शन कला व दृश्यकला का

मूल्यांकन कीजिए और पता लगाइए की क्या यह आपके लिए बच्चों के अधिगम स्तर के बारे में कोई जानकारी दे पाता है या नहीं इस पर एक रिपोर्ट तैयार किजिए।

## सन्दर्भ पुस्तकें और पाठ्यसामग्री


- शिक्षा का वाहन कला– देवी प्रसाद
- कला, संगीत, नृत्य एवं रंगमंच – राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2005 का आधार पत्र
- लर्निंग थ्रू आर्ट (Learning Through Art) – जेन साही
- लर्निंग थ्रू थिएटर (Learning Through Theatre) – टोनी जैकब
- शिक्षा में सृजनात्मक नाटक एवं कठपुतली नर्तन
- द मीनिंग ऑफ आर्ट – हर्बर्ट रीड
- आर्ट एज़ एक्सपीरियंस – जॉन डीवी
- Source Book on assessment for class I – V - NCERT 2008
- सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन स्त्रोत पुस्तिका
- बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2008 का आधार पत्र
- NCF 2005 Position Paper – Arts, Music, Dance and Theatre
- NCF 2005 Position Paper – Heritage of Handicrafts
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2005 का आधार पत्र